उपवास से जीवन-रक्षा

हर्बर्ट एम० शेल्टन

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

१९६७

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

उपवास से जीवन-रक्षा

(Fasting can save your life का हिन्दी रूपान्तर)

लेखक

हर्बर्ट एम० शेल्टन

अनुवादक

धर्मचन्द सरावगी

गांधी स्मारक निधि की प्राकृतिक चिकित्सा समिति की सिफारिश से प्रकाशित–५

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

प्रकाशक : मन्त्री, सर्व सेवा संघ,
राजघाट, वाराणसी

संस्करण : पहला

प्रतियाँ : २,०००; नवम्बर, १९६७

मुद्रक : बल्देवदास,
संसार प्रेस,
काशीपुरा, वाराणसी

मूल्य : तीन रुपया

Title : UPAVAS SE JEEVAN-RA
(Fasting can save you

Author : Herbert M. Shelton

Subject : Nature-cure

Publisher : Secretary,
Sarva Seva Sangh,
Rajghat, Varanasi

Edition : First

Copies : 2,000; November, 1967

Price : Rs. 3.00

प्रकाशकीय

डॉ० हर्बर्ट एम० शेल्टन अमेरिका के सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक
: उपवास-विशेषज्ञ हैं। उनकी 'फास्टिंग कैन सेव योर लाइफ' पुस्तक
काफी प्रचार हुआ है। इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की प्रेरणा
ीकांचन के श्री कृष्णचन्द्रजी से मिली। हिन्दी अनुवाद कलकत्ता के
सेद्ध प्राकृतिक चिकित्सा-प्रेमी श्री धर्मचन्दजी सरावगी ने स्वेच्छा से
दिया। इस तरह यह पुस्तक पाठकों तक पहुँच रही है।

'उपवास' भारत की परम्परा में एक धार्मिक अनुष्ठान बन गया है
: उसके प्रति विशेष आदर की दृष्टि बनी हुई है। उपवास को एक
र का तप माना गया है। तप वह अवश्य है, लेकिन उपवास को
, जीवनोपयोगी और स्वास्थ्य-आरोग्य की प्राप्ति का साधन मानने की
ा ज्यादा जरूरत है।

प्रस्तुत पुस्तक में कुल मिलाकर ३४ प्रकरण हैं। उपवास की महत्ता
विभिन्न प्रकार के सरल-जटिल रोगों में उसके चमत्कार का विवरण
कों को एक ओर आश्चर्यचकित करेगा, तो दूसरी ओर उनमें अपने
स्थ्य के प्रति दृढ़ता का भान भी उत्पन्न करेगा।

अब तो 'उपवास' विषय पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, हो रही
। सर्व सेवा संघ से भी 'उपवास' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हो
ही है।

आशा है, यह पुस्तक पाठकों के लिए लाभदायी साबित होगी।

●

अनुवादक के दो शब्द

एक जमाना था, जब उपवास या व्रत की बात सुनते ही श
सिहरन-सी दौड़ जाती थी, क्योंकि बचपन से यही शिक्षा मिली
यदि मनुष्य एक समय भी न खाये तो जीवित नहीं रह सकता।
ब्रह्मचारियों और बड़े-बूढ़ों से जब सुनता कि धार्मिक अवसरों पर उ
करना आवश्यक है तो बात बहुत अटपटी लगती। सोचता कि 'ज
समय न खाने से आदमी मर जाता है, तो फिर ये लोग लगाता
समय—यानी पूरे ३६ घंटे—न खाने की बात कहते हैं। इसमें
जाने कितना कष्ट होता होगा; इस तरह उपवास करना बैठे-ठाले
बुलाना है।'

बचपन तो बीता, लेकिन विवाह के बाद जब लोगों ने अपने
घर के एक पूर्ण वयस्क सदस्य के रूप में मानकर धार्मिक अवसर
उपवास की नितान्त आवश्यकता की दुहाई दे दी, तब उपवास की
को न समझने के कारण और उपवास करने के ढंग को न जानने के
और साथ ही उपवास के प्रति मानसिक तैयारी न होने के कारण
एक-दो बार घरवालों के दबाव से ३६ घंटे का उपवास कर तो लेत
पर इसमें बड़ा कष्ट अनुभव करता था। इसलिए त्यागी ब्रह्मचारियों,
उपदेशकों और घरवालों को, जो जबर्दस्ती उपवास लादा करते थे,
मन बहुत भला-बुरा कहा करता था।

आज से २५ साल पहले जब प्राकृतिक चिकित्सा की धुन सवार हुई, प्राकृतिक चिकित्सालयों में उपवास के चमत्कारों को देखकर उसके श्रद्धा पैदा होना स्वाभाविक था। छोटे-से-छोटे दो-चार दिन के उप- और बड़े-से-बड़ा, १०० दिन का उपवास करनेवाले रोगी को देखने मौका मिला। यह रोगी लंदन के प्राकृतिक चिकित्सालय में था। जब उससे पूछा कि 'आपको क्या-क्या बीमारियाँ थीं', तो उसने हँसते हुए कि 'आप यह पूछिए कि मुझे क्या-क्या बीमारियाँ नहीं थीं। मेरा बीमारियों की चलती-फिरती प्रदर्शनी बना हुआ था।' यह सब के बाद रोग का निमित्त न होते हुए भी, केवल यह देखने के लिए उपवास में क्या अनुभव होते हैं, मैंने २० दिन का उपवास केवल पानी किया। उपवास के समय घूमने जाता, आफिस का काम करता, किसी प्रकार की थकान न आती। उपवास के दसवें दिन मारवाड़ी फ सोसाइटी के एक उत्सव में सम्मिलित हुआ।

जिन लोगों को यह मालूम था कि मैं उपवास कर रहा हूँ, उन्होंने आश्चर्यचकित होकर पूछा, 'आज तो उपवास का दसवाँ दिन है और घूम रहे हैं। हम लोग तो सोचते थे कि आप लेटे होंगे।' उस उप- से मेरा वजन तो कम हुआ, पर शक्ति कम नहीं हुई। भोजन आरम्भ करने पर वजन पहले से बढ़ा और स्वास्थ्य अच्छा हुआ।

तब से सप्ताह में २ दिन का उपवास करता हूँ। फलस्वरूप कोई बीमारी पास नहीं फटकती।

स्वस्थ रहने के लिए इस सस्ते नुस्खे का प्रचार मैं बराबर करता हूँ। कोल्टन की पुस्तक 'फास्टिंग कैन सेव योर लाइफ' का अनुवाद करने की

वात जब मेरे सामने आयी, तब मैंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। अ
त्रुटियाँ रहना स्वाभाविक है, पर आशा है कि विद्वान् पाठक
अधिक ध्यान नहीं देंगे।

अनुवाद करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि
भारतीय जनता के लिए उपयोगी बने। मूल लेखक अमेरिका-नि
और उनकी पुस्तक अमेरिका के वातावरण, रहन-सहन, खान-पान
बीमारियों को ध्यान में रखकर लिखी गयी है। भारत की दृष्टि से
में आवश्यक संशोधन, संक्षेप आदि कर दिया गया है। यथासम्भ
वाद की भाषा सरल रखी गयी है।

इस पुस्तक के आशय को समझकर पाठक अगर बीमारियों
होने के लिए विवेकपूर्वक उपवास का सहारा लें तो वे निश्चय ही
प्रकार की दवाओं और परेशानियों के झंझट से बच सकते हैं।

सर्व सेवा संघ की ओर से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही
प्रसन्नता की बात है।

जैन हाउस
८।१, एस्प्लानेड ईस्ट
कलकत्ता

—धर्मचन्द सर

अ नु क्र म

१. उपवास और आप

भोजन न करने का ही नाम उपवास नहीं है, बल्कि इसका बहुत व्यापक है। उपवास एक विज्ञान भी है, तो एक कला। उपवास से हमारे जीवन का मनोवैज्ञानिक और भावना-क्षेत्र प्रभावित होता है। उपवास का वास्तविक अर्थ र का सर्वाङ्गीण कल्याण है।

पवास का साधारण अर्थ सभी प्रकार के भोजनों का कुछ त काल के लिए त्याग करना किया जाता है। अंग्रेजी स्टिंग शब्द मूल अंग्रेजी फास्टेन (Fasten) से बना सका वास्तविक अर्थ दृढ़ या निश्चित है। इसलिए शब्द का अर्थ, दूसरे प्रकार से यह होता है कि उपवास या है, जो नियन्त्रित एवं निर्धारित अवस्थाओं में हम दृढ़ य के साथ हाथ में लेते हैं।

र्मिक पर्वों पर हम जो उपवास करते हैं, उसे पूर्ण उपवास हा जा सकता। ऐसे पर्वों पर अन्न एवं अन्न से बने पदार्थ मिष भोजन ग्रहण करना निषिद्ध माना गया है, फिर भी कुछ फलाहार तो किया ही जाता है। इस प्रकार का प्रायः एक वेला तक ही रखा जाता है। अतः इसे अर्ध- कहना ही युक्तिसंगत है। ऐसे अवसरों पर उपवास ले बहुत-से व्यक्तियों का वजन पहले से अधिक बढ़ा है। वे उपवास-काल में साधारण भोजन का त्याग तो अवश्य , परन्तु उसके स्थान में फल, दूध वगैरह अधिक पोषक ला आहार ग्रहण करते हैं।

उपवास और भुखमरी में बहुत अन्तर है। दोनों अवस्थाओं में अन्न ग्रहण नहीं किया जाता। (१) उचित काल तक उपवास करना और (२) भुखमरी की दीर्घ अवधि में अन्नाभाव से प्राण त्याग करना, इन दोनों परिस्थितियों का अन्तर विशेष अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। हम उपवास उतने ही समय तक चालू रख सकते हैं, जितने समय तक हमारे शरीर अपने तन्तुओं में संचित तत्त्वों के बल पर उपवास को सहन कर सकते हों। जब ये संचित तत्त्व पूर्ण रूप से काम में आ जाते हैं या खतरे के विंदु तक क्षीण हो जाते हैं, तब तक अनशन लंबाते जाते हैं तो भुखमरी की अवस्था प्रारम्भ हो जाती है। यह भी ध्यान में रख लेना चाहिए कि कई शब्द भी ऐसे हैं, जो भ्रम पैदा करते हैं, जिससे लोगों की उलझन बढ़ जाती है। उदाहरणस्वरूप 'जल-उपवास' एक शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ जल न ग्रहण करना होता है। किन्तु उसका वास्तविक अर्थ तो है कि अन्य सभी वस्तुओं का त्याग करके केवल जल का ही सेवन करना। यही भ्रम 'फल-रस उपवास' अथवा 'शाक-रस उपवास' के विषय में भी पैदा हो जाता है, किन्तु इनका भी वास्तविक अर्थ यही है कि शेष सभी खाद्य-पदार्थों का त्याग कर केवल इन्हीं पदार्थों को ग्रहण करना।

दैनिक आहार पर पूर्ण रूप से प्रतिवन्ध रखते हुए कुछ नियमों के अनुसार किये जानेवाले किसी भी प्रकार के उपवास को 'आंशिक उपवास' कहा जा सकता है।

'भुखमरी' वस्तुतः प्राण त्यागने की एक प्रक्रिया है। भुखमरी की प्रक्रिया से स्वास्थ्य-लाभ नहीं किया जा सकता। उचित तरीकों से उचित समय तक उपवास करके शारीरिक अवस्थाओं में विशेष

सुधार और अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। उपवास में काफी लम्बे समय तक अन्नादि न ग्रहण करने पर भी शरीर पर अत्यन्त लाभकारी प्रभाव पड़ सकता है। उपवास करानेवाले अनुभवी चिकित्सक जब देखते हैं कि अन्न ग्रहण न करने का परिणाम विपरीत होने की स्थिति आ रही है, तब उपवास बन्द करना होता है।

उपवास नयी जीवन-पद्धति का एक अंग है। इसलिए शरीर का वजन घटाने के लिए ही उपवास नहीं है, बल्कि अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखने या खोये स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने के साधनों का यह एक उत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ अंग बन सकता है, बल्कि वह निश्चित ऐसा है ही।

आप जरा पशुओं की ओर देखिए; वे बीमार पड़ते हैं, घायल होते हैं, फिर भी अच्छे हो जाते हैं। न डॉक्टरी इलाज होता है, न कोई औषधि दी जाती है और न कोई पट्टियाँ बाँधी जाती हैं। इसका प्रधान कारण यही है कि वे उपवास करने की कला को समझते हैं एवं उसका पालन करना भी जानते हैं। वे ऐसे एकान्त स्थानों की शरण लेते हैं, जहाँ वे गरम रह सकते हैं : शीत, वर्षा, गर्मी आदि मौसमों के प्रभावों से रक्षा हो सकती है और कोई खलल नहीं पहुँचता। वे विश्राम और उपवास दोनों कार्य करते रहते हैं। पशुओं के जीवन के अस्तित्व के लिए उपवास एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और आवश्यक अंग है। न केवल घायल व बीमारी की अवस्थाओं में, बल्कि अच्छी अवस्थाओं में भी पशु उपवास रखते हैं।

पक्षियों में कुछ इस प्रकार के पक्षियों का पता चला है, जो अंडों को जब तक सेते रहते हैं, तब तक उपवास रखते हैं।

जन्म से छह महीनों तक भोजन न करनेवाली मकड़ियों का पता चला है।

कुत्ता, बिल्ली, तोता इत्यादि पशुओं और पक्षियों को जब हम पालतू बनाते हैं, तब वे बिलकुल नये वातावरण में कई दिनों तक कुछ भी आहार ग्रहण नहीं करते। कभी-कभी अकाल पड़ने पर व तुषारपात होने पर पशुओं को खाद्य-पदार्थों के अभाव में मजबूरी से बहुत दिनों तक उपवास करना पड़ता है। ऐसी स्थितियों में भी बिना कुछ खाये बहुत दिनों तक जीवन-रक्षा करने में वे सक्षम पाये गये हैं।

संसार के बहुत-से भागों में शताब्दियों से धार्मिक, राजनैतिक, चारित्रिक तथा स्वास्थ्य-सुधार के निमित्तों से मनुष्यों के द्वारा उपवास का प्रयोग होता आ रहा है। केवल हाल के ही कुछ वर्षों में लोगों की ऐसी धारणा बनी कि शक्ति बनाये रखने के लिए भोजन करना अत्यन्त आवश्यक है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में प्रसिद्ध डच चिकित्सक डॉ० फेलिक्स ओसवाल्ड अमेरिका पहुँचे और उन्होंने घोषित किया :

"उपवास-चिकित्सा-प्रणाली हमारे मूक प्राणियों तक ही सीमित नहीं है। कोई मूर्ख ही होगा जो बुखार, दर्द, उदर एवं अँतड़ियों के अवरोध एवं मंदाग्नि में उपवासरूपी नैसर्गिक मार्ग की अवहेलना करता होगा। सर्वसाधारण अनुभवों के आधार पर उक्त रोगों में उपवास करना ही प्राकृतिक चिकित्सा का सर्वोत्तम अंग है।"

उपवास करने की प्रथा शताब्दियों से चली आ रही है। बाइबिल एवं होमर की रचनाओं में उपवास के विषय में वर्णन मिलता है। ग्रीक व मिश्र के प्राचीन मन्दिरों में एवं भूमध्य-

सागरीय समस्त देशों में प्राचीन काल से ही उपवास के द्वारा रोगियों की चिकित्सा की जाती थी। तीव्र व्याधियों में उपवास का प्रयोग तो और भी प्राचीन काल से होता आ रहा है। मध्यकालीन यूरोप में अरेबियन शाखा के चिकित्सक रोगों के उपचार में उपवास करने का परामर्श देते थे। १५० वर्ष पहले इटली में ज्वर से पीड़ित रोगियों को डॉक्टरों के आदेशानुसार कभी-कभी ४५ दिनों तक उपवास करना पड़ता था।

लेखक स्वयं सन् १९२० से उपवास कराने के कार्य में लगा हुआ है। लगभग ४५ वर्षों की इस अवधि में कम अवधि के तथा नव्वे दिनों की अवधि के हजारों उपवासों की देखभाल की है। कुछ उपवास शरीर के भारीपन (अत्यधिक वजन) को घटाने के उद्देश्य से, तो कुछ उपवास खोयी हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के उद्देश्य से कराये गये थे।

एक वृद्ध रोगी की बड़ी रोचक घटना है, जिसे उपवास से आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई थी।

उक्त महाशय की उम्र ७० वर्ष थी और इस बीच काफी वर्षों तक वे बीमार रहे थे। तेरह वर्षों तक फेफड़े और दमा की बीमारी से वे कष्ट पा रहे थे। और इसी बीच पाँच बार अस्पताल भी जा चुके थे। इससे भी अधिक वर्षों से वे नासूर से कष्ट भोग रहे थे। छह वर्षों से वे बायें कान से बहरे हो गये थे। छह वर्षों से अधिक काल से शिश्न की ग्रन्थियों की गिल्टियों के विस्तार से कष्ट झेलते हुए कुछ वर्षों से नपुंसक भी हो चुके थे। सिर से गंजे, आँखों पर चश्मा और अन्य छोटे लक्षणों से पता चलता था कि उनके शरीर की अवस्था कितनी शोचनीय बन चुकी थी।

यद्यपि प्रचलित प्रणालियों के द्वारा उन्होंने अपना इलाज करवाया था, फिर भी उन्हें कुछ खास लाभ नहीं प्राप्त हो सका

था। दूसरे रोगियों की तरह वे भी कष्ट झेलते रहे और उनकी अवस्था दिन-प्रतिदिन बद-से-बदतर ही होती गयी। दमे के विषय में सभी लोग जानते हैं कि वर्तमान चिकित्सा-प्रणाली केवल रोगियों को क्षणिक शांति प्रदान कर सकती है, किन्तु परिणाम में रोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। नासूर (सिनस), बहिरापन एवं शिश्न-ग्रन्थियों की गिल्टियों के विस्तार (एनलार्जमेन्ट ऑफ दि प्रोस्टेट ग्लैंड) में कुछ भी स्थायी लाभ आज तक भी रोगियों को नहीं पहुँचाया जा सका है और उन्हें असाध्य मान लिया गया है।

बराबर डॉक्टरी औषधियों एवं चिकित्सा से अब वे भी हार मान चुके थे। कहीं से भी उन्हें रोगों से छुटकारा पाने की झलक भी न मिल सकी। अन्त में उन्हें दृढ़ विश्वास हो चुका था कि प्रचलित अस्पतालों और दवाओं में वह शक्ति नहीं, जो उन्हें नयी जिन्दगी दे सके। उन हजारों निराश रोगियों की भाँति वे भी एक दिन उस सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठान में पहुँचे, जो असाध्य रोगों को नयी प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति से निर्मूल करने के लिए बहुत ख्याति प्राप्त कर चुका था।

पहुँचते ही उन्हें इस प्रतिष्ठान में भर्ती कर लिया गया। चिकित्सक ने उन्हें उन सभी औषधियों को त्याग देने का परामर्श दिया, जिनको वे आज तक सेवन करते आ रहे थे। रोगी ने कहा कि यदि मुझ पर दमे का फिर दौरा होगा, तो मैं उस हालत में क्या करूँगा ? डॉक्टर ने उत्तर दिया कि यदि आप उन औषधियों का सेवन जारी रखें तो कभी भी अच्छे नहीं हो सकेंगे। इसीलिए दृढ़ चित्त से, अटल साहस और धैर्य से आपको रोगों के सभी कष्ट झेलने पड़ेंगे।

उन्हें पलंग पर विश्राम करने की सलाह दी गयी। पथ्य के रूप में केवल जल पीने के लिए कहा गया। उन्होंने सोचा कि "उपचार तो रोग से भी अधिक दुखदायी हो रहा है। क्या मैं अन्न के बिना जी सकूँगा? वर्षों की बीमारी के कारण ऑक्सीजन ग्रहण करने की भी शक्ति शरीर में नहीं बची है।" डॉक्टर ने उन्हें विश्वास दिलाया कि आप न घबड़ायें। हम सावधानीपूर्वक आपकी देखभाल करेंगे और हर सम्भावित खतरों से आपको सुरक्षित भी रखेंगे।

कुछ आतंक और घबराहट से उन्होंने उपवास करना प्रारम्भ कर दिया। यह उनके लिए बिलकुल नया और आश्चर्यजनक रूप से आनन्दप्रद अनुभव सिद्ध होनेवाला था। उपवास करने का अनुभव सर्वदा सुखकर नहीं होता, किन्तु इसके अनुभव को रुचिकर और अत्यधिक आनन्ददायी बनाया जा सकता है। अन्न न ग्रहण करने की अवधि में काफी आराम व स्वतंत्रता का अनुभव प्राप्त होता है। इन्हींके द्वारा हम उन सभी रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करते हैं, जिनका पहले स्वप्न में भी आभास नहीं होता। उसी दिन जीवन का वास्तविक अर्थ प्रकट हो जाता है।

उपवास के अगले दिन प्रायः ४ बजे प्रातःकाल दमे के आवेग ने भयंकर रूप धारण कर लिया था। रोगी में श्वास लेने की भी शक्ति नहीं रह गयी थी। अतएव बिस्तर के किनारे बैठते हुए सहायता के लिए उसने घंटी बजायी। चिकित्सक आये और रोगी की परीक्षा करके बतलाया कि "आप थोड़े ही समय में बिलकुल अच्छे हो जायेंगे। अभी प्रायः २४ घंटे और लगेंगे, जब आप दमे के लक्षणों से मुक्त हो सकेंगे और तभी आपको विशेष आराम प्राप्त होगा।"

चिकित्सक के चले जाने पर रोगी ने वहीं पास में लेटे दूसरे रोगी से पूछा कि "मैं कैसे स्थान में आ गया हूँ कि रोग के आवेग में भी ये लोग राहत पहुँचाने के लिए कुछ भी उपाय नहीं कर रहे हैं!" ऐसी अवस्था में कुछ और मिनटों तक वह साँस लेने के लिए संघर्ष करता रहा। इतने में उसे राहत मिली और वह सो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल के समय पुनः चिकित्सक जब रोगी को देखने आये, तब उसकी अवस्था इतनी सुधर चुकी थी कि वह गत रात्रि के व्यवहार को, जिसे वह उपेक्षा मान रहा था, बिलकुल ही भूल चुका था। उसके आनन्द व प्रसन्नता की सीमा न थी। अब वह एक छोटे बच्चे के समान सुगमतापूर्वक श्वास ले सकता था। दमे का एक भी लक्षण अब उसके भीतर नहीं रह गया था। जब तक वह प्रतिष्ठान में रहा, तब तक उसके ऊपर दमे का दूसरा दौरा पड़ा ही नहीं। उसके नासूर से अब भी पीब एवं मल बाहर हो रहे थे। अतः उपवास को चालू रखा गया। प्रायः छह दिनों के उपवास के बाद अब वह एक बच्चे की तरह सुगमतापूर्वक पेशाब करने में भी समर्थ हो चुका था। शिश्न-ग्रन्थियों की बढ़ी हुई गिल्टियाँ अब अपने स्वाभाविक रूप में आ चुकी थीं।

रोगी का उपवास चलता रहा। दिन-प्रतिदिन व्याधियों के लक्षण दूर होते गये। नासूर अच्छा हो गया। श्वास लेने में आनन्द मिलने लगा। उसका सीना अब उसके वास्तविक आनन्द का स्रोत बन चुका था। इस तरह पूरे पचीस दिन के उपवास के बाद रोगी ने चिकित्सक से पूछा कि "क्या वह अब उपवास तोड़ सकता है?" चिकित्सक ने उत्तर दिया कि "अभी आपकी अवस्था बिलकुल ठीक नहीं हुई है। अभी उपवास चालू रखने में

ही बुद्धिमानी है। आप जेल में नहीं हैं और हम आपकी इच्छा के प्रतिकूल उपवास नहीं करवा सकते हैं। किन्तु यदि आप हमारी अच्छी सलाह मानें तो कुछ दिन और उपवास चालू रखें।"

रोगी ने चिकित्सक की सलाह को उचित समझा और उपवास जारी रखा। उपवास के छत्तीसवें दिन जो आश्चर्य-जनक घटना घटी, वह भुलायी नहीं जा सकती। रोगी के बहरे कान में श्रवण-शक्ति भी वापस लौट आयी। इतनी अच्छी श्रवण-शक्ति लौटी कि पास में रखी छोटी घड़ी की 'टिक-टिक' ध्वनि को भी वह खूब अच्छी तरह सुन सकता था। साथ-ही-साथ वह श्रवण-शक्ति क्षणिक नहीं थी, स्थायी थी। उपवास बयालीस दिनों तक चलता रहा, तब कहीं रोगी को पथ्य देना शुरू किया गया।

दूसरी आश्चर्यजनक घटना यह हुई कि घर लौटने पर उपवास तोड़ने के कुछ ही सप्ताह बाद उसकी नपुंसकता भी दूर हो गयी। इस संस्था के संचालक के लिए यह कोई आश्चर्यजनक बात न थी, क्योंकि अकसर देखा गया है कि उपवास के द्वारा खोया हुआ पुरुषत्व पुनः प्राप्त करना कोई असम्भव बात नहीं है।

यह काल्पनिक घटना नहीं है, बल्कि एक रोगी की सच्ची कहानी है, जिसे व्याधियों ने सताया था और जिसका उपचार उपवास के द्वारा हमारे निर्देशन में किया गया था। उसे उपर्युक्त सभी लाभ प्राप्त हुए थे। सभी अवस्थाओं में बहिरापन उपवास से दूर नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार उपवास के द्वारा सभी प्रकार की अन्धता भी दूर नहीं की जा सकती। किन्तु इतना सत्य अवश्य है कि दृष्टि-शक्ति एवं श्रवण-शक्ति को उपवास के द्वारा अधिक शक्तिशाली बनाया जा सकता है।

जिन्हें उपवास करने का अवसर प्राप्त है, उन्हें ऐसी घटनाओं की सत्यता में अवश्य विश्वास होगा। उपवास से आश्चर्यजनक फल प्राप्त हो सकते हैं। अगर हमें उपवास करने का कुछ भी ज्ञान है, तो हम निःसंकोच कह सकते हैं कि रोगियों की चिकित्सा का सर्वोत्तम प्राकृतिक एवं विवेकपूर्ण साधन उपवास ही है।

प्राकृतिक चिकित्सकों एवं स्वास्थ्य-सुधारकों ने १४० वर्षों से या इसके कुछ वर्ष पहले से ही स्वास्थ्य-संवर्धन और शीघ्रतापूर्वक बीमारियों को शरीर से दूर करने के साधन के रूप में उपवास का प्रयोग किया है। इस क्षेत्र में चिकित्सा-सम्बन्धी असाधारण अनुभव उन्हें प्राप्त हुए हैं। इन्हीं अनुभवों से यह धारणा सुदृढ़ हुई है कि उपवास एक विधायक शक्ति है, जिसे आधुनिक जीवन के नियमित कार्यकलापों के अंगरूप में अवश्य व्यवहार में लाना चाहिए और साथ-ही-साथ उपवास का विकास और प्रसार भी करना चाहिए।

वास्तव में उपवास का खंडन करनेवाले वे ही लोग हैं, जिन्हें उपवास व उसकी तकलीफ का अत्यल्प ज्ञान प्राप्त है। इंग्लैंड के डॉ० ए० रावोग्लियाटी, ए० एम०, एम० डी०, एफ० आर० सी० एस० का कथन है कि "उपवास की आलोचना करनेवाले अकसर वे ही लोग हैं, जो अपने जीवन में दिन के एकाध समय का भी भोजन त्याग नहीं सके हैं।"

जो लोग अपने मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रखते हैं और अपनी भलाई चाहते हैं, वे कभी भी उपवास की उपेक्षा नहीं कर सकते। चाहे हमें अपना स्वास्थ्य सुधारना हो और शरीर का वजन बढ़ाना या घटाना हो, सभी के लिए उपवास का बहुत बड़ा महत्त्व है।

२. वजन घटाने के लिए उपवास

भारी-भरकम शरीर के वजन को घटाने, शरीर की आकृति को सौम्य, सुगठित एवं स्वाभाविक बनाने और आराम देनेवाले भोजन की योजनाओं से सम्बद्ध उद्योग-धन्धे काफी बढ़ गये हैं। हमारे युग के बड़े-बड़े उद्योगों में वे भी हैं। सभी लोग अपने को निष्णात मानते हैं। शौकिया भोजन का मजा कुछ दिनों में खत्म हो जाता है। कभी आइसक्रीम, कभी केला, कभी प्रोटीन, तो कभी रसदार मांस के टुकड़े इत्यादि-इत्यादि पथ्य सुझाये जाते हैं। इन सभी का उद्देश्य भारी-भरकम भोंदापे को पतला बनाना रहता है।

स्वास्थ्य-सुधारक यथार्थवादी होते हैं। निस्सन्देह उपवास से बढ़कर वजन को निश्चित और सुरक्षित रूप से अति शीघ्र घटाने का और कोई उपाय नहीं है। उचित वजन बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि खान-पान के गलत तरीकों व आदतों को हम सदा के लिए छोड़ दें।

नियत आहार ग्रहण करते हुए शरीर की स्थूलता को घटाने का बहुत-से स्थूलकाय व्यक्तियों ने काफी प्रयत्न किया, फिर भी उन्हें वजन घटाने में बहुत ही कम सफलता मिल सकी है। एक तो इसकी गति बहुत ही मन्थर है, दूसरे, इसके पालन करने में अधिक संयम की आवश्यकता पड़ती है और तीसरे, संयम की अवधि लम्बी होने से इसका पालन साधारण व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर हो जाता है। थोड़े दिनों के पथ्य से वजन कुछ घट जाता है, पर शीघ्र ही पुरानी आदत हावी हो जाती है। लोग

गलत ढंग से अधिक भोजन करने लगते हैं और परिणामस्वरूप वजन घटने के बजाय अधिक बढ़ जाता है। शायद ही किसीने मोटे व्यक्तियों को बहुत अधिक समय तक नियन्त्रित लघु-भोजन पर जीवन-यापन करते देखा हो।

उपवास के अनुभवी चिकित्सकों की सलाह और निर्देशन के बगैर किसी भी व्यक्ति को लम्बा उपवास नहीं करना चाहिए। यद्यपि उपवास शरीर के वजन को घटाने एवं स्वास्थ्य सुधारने का सर्वथा निरापद साधन माना गया है, तथापि उपवास की अवस्था में इसका प्रभाव हमारे शरीर के सभी जटिल अंग-प्रत्यंगों पर पड़ता है। कह नहीं सकते कि कब कैसे लक्षण उत्पन्न हो जायँ; इसलिए सारी गतिविधि पर नजर रखनेवाले किसी अनुभवी चिकित्सक के संरक्षण और निर्देशन में ही उपवास करना सर्वदा कल्याणकारी होता है।

प्रतिदिन कितना वजन घटाया जाय? यह तो व्यक्ति-विशेष की शारीरिक अवस्थाओं और परिस्थितियों पर निर्भर है। दीर्घकालीन उपवासों में औसतन् २½ पौंड वजन प्रतिदिन के हिसाब से घटता रहता है। यदि वह उपवास किसी अनुभवी चिकित्सक के उचित निर्देशन और नियन्त्रण में उचित और निरंतर विश्राम के साथ सम्पन्न किया गया हो, तो इतनी अधिक मात्रा में वजन के घटने में कोई खतरा नहीं है।

वजन घटाने के उद्देश्य से किये गये उपवासों से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं:

(१) शरीर का वजन बिना किसी खतरे के शीघ्र घटता है।

(२) भोजन घटाने की अपेक्षा पूर्ण उपवास में अधिक आनन्द आता है, क्योंकि उसमें भोजन करने की हमारी दोषपूर्ण इच्छा नष्ट हो जाती है।

(३) उपवास से शरीर की स्नायुओं और त्वचा पर कोई हानिकर प्रभाव नहीं पड़ता। त्वचा की कोमलता ज्यों-की-त्यों बनी रहती है एवं उसमें सिकुड़न नहीं आती। (वृद्ध पुरुषों के विषय में यह बात सर्वदा लागू नहीं होती।)

ज्यों-ज्यों वजन घटने लगता है, त्यों-त्यों स्वास्थ्य के कुछ लक्षण दीखने लगते हैं। जैसे :

(१) पहले से अधिक आसानी से श्वास चलने लगती है।

(२) शरीर की संचालन-क्रिया अधिक सुगम व सरल हो जाती है।

(३) 'थकावट का एहसास' बिलकुल नष्ट हो जाता है।

(४) उदर और पेड़ू का भारीपन और कष्ट दूर हो जाते हैं।

(५) कब्ज और बदहजमी खत्म हो जाती है।

(६) दूसरी तकलीफें मिट जाती हैं।

(७) रक्तचाप कम हो जाता है और साथ ही हृदय का बोझ हलका हो जाता है।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि उस वजन के घटने का मुख्य कारण हमारे आहार में चीनी, चर्बी और श्वेतसार (स्टार्च) की मात्रा का घटना है।

मेरे प्राकृतिक चिकित्सा-केन्द्र में बहुत-सी महिलाएँ शरीर के वजन को घटाने के उद्देश्य से प्रविष्ट हुई थीं। उनमें से कइयों ने थोड़े दिनों के और कइयों ने अधिक समय के उपवास किये। चर्बी और वजन को घटते देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उपवास और विश्राम दोनों का आनन्द लेती थीं। कितनी महिलाओं को केवल ७०० कैलोरीज पर ही गुजारा करना पड़ता था। भूख बनी रहती थी। लेकिन उपवास से उनको आनन्द मिलता था।

यद्यपि उपवास का अनुभव सर्वदा सुखद नहीं होता, तो भी जीवन में जब ऐसी परिस्थिति आ जाती है कि भोजन की अधिकता कष्ट और वेदना को ही बढ़ाती है, तब उपवास से ही उन दुःखों से मुक्ति प्राप्त होती है। उस अवस्था में उपवास की कटुता भी मधुरता का रूप धारण करती है।

प्रतिदिन २ से लेकर ४ पौंड तक चर्बी को पिघलते देखकर बड़ा सन्तोष होता है। वजन सर्वदा समान गति से नहीं घटता है। उपवास के प्रारम्भिक दिनों में वजन घटने की मात्रा अधिक रहती है, किन्तु पीछे कम हो जाती है।

उपवास में शरीर की सुरक्षा तो है ही, साथ ही शरीर को अधिक आराम मिलता है, जो भोजन में नहीं मिलता। क्योंकि सर्वदा आहार करनेवालों की तरह उपवास रखनेवाले व्यक्तियों को सभी समय भूख नहीं सताती, उनकी रसना की लालसा अनवरत जगी नहीं रहती, उनके आंत्ररस हमेशा बहते नहीं रहते।

उपवास के प्रथम व दूसरे दिन उनको भोजन की कुछ इच्छा होती है और कभी-कभी तो नहीं भी होती। तीसरे दिन के अन्त में तो भूख लगती ही नहीं। दुर्बलता का अनुभव होगा ही नहीं और वे कई दिनों तक उपवास चालू रख सकते हैं।

उपर्युक्त मत का स्पष्टीकरण और पुष्टीकरण प्राकृतिक चिकित्सकों, वैज्ञानिकों एवं आधुनिक ऐलोपैथिक चिकित्सकों ने भी किया है। उन्होंने अपने निजी अनुभव और प्रत्यक्ष अन्वेषण के आधार पर इसकी यथार्थता सिद्ध की है।

स्वस्थ व्यक्तियों को वजन घटाने के लिए केवल उपवास ही नहीं, बल्कि आवश्यक व्यायाम भी करना चाहिए। शारीरिक

परिश्रम के लिए भी नियमित योजनाएँ वना लेनी चाहिए। इससे शरीर का वजन बहुत तेज़ी से नहीं घटता, किन्तु तन्तुओं की सहज स्थिति बनाये रखने में काफी सहयोग प्राप्त होता है।

केवल व्यायाम द्वारा वजन घटाने में काफी समय लगता है। और वह इतने अधिक प्रमाण में करना होता है कि साधारण व्यक्तियों में उतनी शक्ति नहीं होती कि वह ठीक से पूरा कर सकें। साढ़े दस घंटों की काठ की चिराई या तैंतालीस मील की घुड़सवारी में केवल एक पौंड चर्बी घटती है।

व्यायाम का सबसे वड़ा दोष यह है कि इससे भूख अधिक लगती है। अतः उपवास-काल में उतना ही व्यायाम करना चाहिए, जितना चिकित्सक के विचार से उचित हो।

वजन के चयापचय की भिन्न-भिन्न मात्राएँ होती हैं। अनुभव के आधार पर पता चलता है कि अधिकांश में स्वाभाविक से अधिक वजन का बढ़ना अधिक और गलत तरीकों से भोजन करने का ही परिणाम है। ग्रन्थियों की अव्यवस्थाओं को उतना दोषी नहीं ठहराया जा सकता। "कुछ लोग जो भी खाते हैं, वह सारा चर्बी में परिवर्तित हो जाता है" ऐसी धारणा बनाना एक प्रकार की भूल है। वास्तविकता यह है कि उन्हें जितना खाना चाहिए, वे उससे अधिक खाते हैं, यही नहीं, बल्कि उन्हें वास्तविक आवश्यकता जितनी है, उससे भी ज्यादा खाते हैं।

३. उपवास और भोजन

मार्च १९६३ में संसार के समाचार-पत्रों में सात सप्ताह तक बिना अन्न के जीवित रहने की एक रहस्यपूर्ण कहानी प्रकाशित हुई थी। बहुतों को इस पर विश्वास ही नहीं होता था, किन्तु घटना बिलकुल सत्य थी। यह कहानी कैलीफोर्निया के पायलट दम्पति की है, जिन्हें वायुयान-दुर्घटना के कारण उत्तरी ब्रिटिश कोलम्बिया के पहाड़ों पर निर्जन स्थान में, बिना भोजन के, प्रचण्ड शीत के प्रहारों को झेलते हुए ४९ दिनों तक जीवन-यापन करना पड़ा। राल्फ फ्लोरेज की अवस्था ४२ वर्ष की थी और हेलेन क्लावेन की अवस्था २१ वर्ष। २५ मार्च १९६३ को उन दोनों का उद्धार किया गया। आग जलाकर, भारी कपड़ों से शरीर को ढँककर कठिन शीत से ४९ दिनों तक वे लोग अपनी रक्षा करते रहे। दुर्घटना के पहले चार दिनों में उन्होंने चार टीन मछलियाँ, दो टीन फल और कुछ क्रेकर (बिस्कुट) खायीं। दुर्घटना के बीसवें दिन ये दो ट्यूब टूथ-पेस्ट का अन्तिम आहार किया था। सुबह, दोपहर और शाम को वे आहार के रूप में पिघले बर्फ का सेवन करते थे। अन्तिम छह सप्ताहों तक वे केवल पानी पीकर जीते रहे। रुचि-परिवर्तन के लिए ठंडा, गरम और उबाला हुआ बर्फ का पानी लेते थे।

क्लावेन दुर्घटना के समय काफी स्थूलकाय थीं, किन्तु इस कठिन परीक्षा के बाद शरीर का ३० पौंड वजन घटा देखकर उनके आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना नहीं रहा।

फ्लोरेंज को विवश होकर जो उपवास करना पड़ा था, उस पूरे उपवास-काल में भी वे काफी सक्रिय एवं सशक्त पाये गये थे। उनके शरीर का ४० पौंड वजन कम हुआ था। जिन चिकित्सकों ने उन लोगों का परीक्षण किया था, उन्हें बहुत ही स्वस्थ और प्रसन्न पाया था।

अब तक हजारों स्त्रियों व पुरुषों ने लम्बे उपवास किये हैं। लम्बे उपवास-काल में अन्न, फल, रस कुछ भी ग्रहण नहीं किया है। उन्हें कोई हानि तो हुई नहीं, बल्कि लाभ ही लाभ प्राप्त हुआ है। जैसी परिस्थितियों में इन दो व्यक्तियों ने बहुत-सा कष्ट उठाया, कठिन शीत और भूख की पीड़ा में महीनों गुजार दिया, वैसी परिस्थितियाँ देखने व सुनने में बहुत कम मिलती हैं।

'जीवन की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ?', 'जीवन क्या है ?' इन सब प्रश्नों का उत्तर तो दार्शनिक व मनीषी दे सकते हैं। किन्तु हम सभी जानते हैं कि अकाल के दिनों में जब खाद्य पदार्थों का अभाव रहता है, तब भी प्रकृति पशु और पौधों को, अपने सुरक्षित भण्डारों से, जीवनदायिनी शक्ति प्रदान करती रहती है। हम लोग जितनी बार देखते और समझते हैं, उससे अधिक बार प्रकृति में प्रायः अकाल जैसी स्थिति बनी रहती है। तुषार-पात, जल-प्लावन और अनावृष्टि के कारण जंगली पशुओं को बहुत ही कम आहार पर जीवन बिताना पड़ता है। जंगली जानवरों में बहुत-से जानवर अकसर कम आहार पर ही जीने के आदी बन जाते हैं। जंगली कुत्ते, भेड़िये और घोड़े आदि कठिन परिस्थितियों में भी भुखमरी से नहीं मरते।

अनेक चिकित्सकों ने अपने विभिन्न अनुभवों और प्रयोगों से इस बात की पुष्टि की है कि प्राणी अन्न के अभाव में काफी समय तक स्वस्थ और सक्रिय रहते हैं।

नोबेल पुरस्कार-विजेता, पौष्टिक आहार के विशेषज्ञ, प्रसिद्ध बायोकेमिस्ट, स्वेडन-निवासी डाक्टर रग्नार बर्ग का कथन है कि "मैंने १०० दिनों से अधिक समय तक का उपवास करते हुए मनुष्यों को देखा है। अतः हमें भय नहीं करना चाहिए कि उपवास में हम भूख से मर जायेंगे।"

मिस्टर फ्लोरेज और क्लावेन को परिस्थितियों ने बाध्य करके जो बिना आहार के जीवित रखा, वह कोई विशेष लम्बा उपवास नहीं था। अब प्रश्न यह नहीं है कि मनुष्य कितने दिनों तक बिना आहार के उपवास रख सकता है, बल्कि यह देखना है कि प्रकृति के क्या उपकरण हैं, जो उपवास-काल में उसे जीवित रखते हैं।

सभी जीवित प्राणियों के शरीर में घिसने की और नष्ट होने की, मरम्मत की और दुबारा पूर्ति की प्रक्रियाएँ निरन्तर और प्रायः एक साथ ही होती रहती हैं। ये प्रक्रियाएँ उपवास-काल में भी चलती रहती हैं और उनमें से एक भी रुक नहीं सकती। शीत-प्रदेशीय पशुओं में शरीर को गरम रखने के लिए काफी मात्रा में गरमी उत्पन्न करने की शक्ति उनके शरीर के भीतर ही रहती है। मनुष्य और पशु दोनों उपवास-काल में श्वास अवश्य ही लेते रहते हैं और दोनों के हृदय की धड़कनें बराबर चालू रहती हैं। शरीर में रक्त का संचार होता ही रहता है। शरीर के मल आदि समस्त दूषित विकारों को दूर करनेवाले अंग बराबर अपना कार्य चालू रखते हैं। कोषाओं की पूर्ति होती ही है। घावों की चिकित्सा होती ही है। वर्षों के अनुभवों के आधार पर पता चला है कि उपवास-काल में उपर्युक्त सभी क्रियाएँ सफलतापूर्वक होती

रहती हैं। बिना अन्न ग्रहण किये भी उपवास-काल में शरीर में विकास व वृद्धि होती रहती है।

जीवन की प्रत्यक्ष क्रियाएँ—गति-संचालन, मल-निकास, पाचन तथा अन्य क्रियाएँ शरीर में स्थित पदार्थों के उपयोग पर निर्भर करती हैं। यदि शरीर का कोई अंग अपना कार्य कर रहा हो, तो उसे उन पदार्थों को अवश्य प्रदान करना चाहिए, जिनसे उसका कार्य बराबर निर्विघ्न रूप से चालू रहे। जब वे सारे पदार्थ शेष हो जाते हैं और उनकी पूर्ति दूसरे ताजे पदार्थों से नहीं कर पाते, तब शरीर के अंग दुर्बल और नष्ट हो जाते हैं। यदि हमें जीवित रहना है तो कम-से-कम उन क्रियाओं के न्यूनतम स्तर को बनाये रखना बहुत आवश्यक कर्तव्य है। हमें ज्ञात है कि पशुओं में भी दूसरे साधनों से शरीर के कार्य-संबंधी तन्तुओं के आवश्यक पदार्थों की पूर्ति कर लेने की शक्ति है और उपवास के समय वे उन्हीं साधनों से प्राप्त पदार्थों का उपभोग कर जीवन को बहुत लम्बे समय तक सुरक्षित रखते हैं।

दीर्घकालीन उपवास में, आहार के अभाव में कैसे हम लोग बहुत दिनों तक जीवित रहते हैं, इसकी जानकारी के लिए हमें शरीर की सारी प्रक्रियाओं को समझना चाहिए—शरीर आवश्यक तन्तुओं को पुष्ट रखता है और कैसे शरीर की सारी क्रियाएँ चालू रहती हैं?

हमारा शरीर ही पौष्टिक तत्त्वों का खजाना है। ये तत्त्व शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में संगृहीत रहते हैं। स्वस्थ शरीर में एकत्रित चर्बी, मज्जा, शक्कर, पेशियों के रस, दूध के गुणवाले तरल पदार्थ, खनिज पदार्थ और विटामिन के ऊपर हमारा शरीर बिना किसी बाहरी आहार के ही लगभग तीन महीनों तक बड़ी

आसानी से चल सकता है। जब हम भोजन नहीं करते हैं, तब हमारा शरीर इन्हीं तत्त्वों का उपभोग करता रहता है। जब ये संचित पदार्थ शेष हो जाते हैं, तब शरीर का वजन भी कम हो जाता है। सुरक्षित शरीर के भीतर वे सभी पोषक तत्त्व हैं। जैसे, रक्त और पित्त में, हड्डियों की मज्जाओं में, यकृत और स्नायु-ग्रन्थियों में, चर्वी में, असंख्य कोषाओं में प्रोटीन, फैट (स्निग्ध द्रव्य), शुगर (शर्करा), मिनरल सॉल्ट (खनिज द्रव्य) और विटामिन भरे हुए हैं। जब तक ये तत्त्व हमारे शरीर में जमा रहेंगे, तब तक बिना अन्न के भी उपवास करने में हमें कुछ भी असुविधा नहीं मालूम होगी।

इस प्रक्रिया को ऑटोलिसिस कहते हैं। रक्त और पित्त के द्वारा शरीर में पहले से एकत्रित पदार्थ प्राण-तन्तुओं तक पहुँचते हैं। ये प्राण-तन्तु उनका उपभोग करते हैं। ग्लीकोजेन और एनिमल स्टार्च (सजीव निशास्ता) यकृत में रखा रहता है और वही चीनी में परिवर्तित हो जाता है और आवश्यकतानुसार प्राण-तन्तुओं को प्राप्त होता है। शरीर-स्थित ये पदार्थ पूर्ण रूप से संतुलित होते हैं; इसका प्रमाण यह है कि बहुत लम्बे उपवासों में भी बेरी-बेरी, शीर्णत्वक्-रोग रिकेट्स, स्कर्वी आदि बीमारियाँ उत्पन्न होती देखी नहीं गयी हैं।

रिकेट्स और कैल्शियम मेटाबोलिस्म (चयापचय) में उपवास के कारण खास सुधार होते देखा गया है। एनीमिया (रक्ताल्पता) में उपवास करने से लाल रक्त की कोषाओं की संख्या बढ़ती हुई पायी गयी है। उपवास-काल में बायोकेमिकल संतुलन तो ठीक रखा ही जा सकता है और साथ ही साथ भविष्य के लिए भी कुछ तत्त्व सुरक्षित रखे जा सकते हैं। अगर ऐसा न होता तो उपवास घातक सिद्ध होता।

पशुओं के ऊपर बहुत से परीक्षण किये गये हैं। उन्हें कम मात्रा में आहार देकर रखा गया, किन्तु उसके फलस्वरूप उन्हें अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन की ही प्राप्ति हुई। दूसरे पशुओं पर उपवास का प्रयोग किया गया, इसका भी परिणाम बहुत सफल हुआ। मानो उनका नया जन्म हुआ और उनके शरीर में नयी शक्ति और उमंग का संचार हो गया था।

हजारों मनुष्यों और पशुओं पर उपवास का प्रयोग करने के पश्चात् अब यह सिद्ध हो चुका है कि उपवास में प्राण-तन्तु अधिक सक्रिय हो उठते हैं। पहले चर्बी के तन्तु कम होने लगते हैं। मस्तिष्क, स्नायु, हृदय और फेफड़े के पोषक तत्त्व प्राप्त करने के पहले ही पूर्व-संचित तत्त्वों का भण्डार शेष हो जाता है। तब प्रोटीन, शुगर (शर्करा), फैट्स (स्निग्ध द्रव्य), मिनरल (खनिज) और विटामिन की आवश्यकता पड़ती है। उन्हें सुरक्षित रखना, यथास्थान पहुँचाना और उपभोग में लाना प्राण-तन्तुओं का ही काम है। उपवास की अवस्था में समस्त अंगों की संचालन-क्रिया को देखकर महान् आश्चर्य होता है कि कितने सुचारु रूप में और विवेक से यह सारी अद्‌भुत व्यवस्था की गयी है। क्षति-पूर्ति की क्रियाओं में तारतम्य भी रहता है। जीवन के आवश्यक अंगों के अभाव की पूर्ति दूसरे कम महत्त्व के अंगों से की जाती है।

अन्न ग्रहण न करने की दो अवस्थाएँ हैं : उपवास और भुखमरी। किन्तु ये दोनों अवस्थाएँ एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। भुखमरी (स्टारवेशन) में मनुष्य का बहुत बड़ा अहित होता है तथा शारीरिक वजन भी अत्यधिक परिमाण में घटता है, किन्तु उपवास में, भले वह लम्बे समय का ही क्यों न हो, ऐसी शोचनीय स्थिति नहीं आती है। उपवास में जब वजन का ह्रास

उचित सीमा को पार करने लगता है, तब उसे भंग कर दिया जाता है।

उपवास अन्न ग्रहण न करने की वह अवस्था है, जिसमें उपवास-काल में प्राण-तन्तुओं का भरण-पोषण करने योग्य पोषक तत्त्वों का पर्याप्त भण्डार हमारे शरीर में रहता है। भुखमरी (स्टारवेशन) वह अवस्था है, जहाँ ये पूर्व-संचित पोषक तत्त्व पहले ही शेष हो चुके होते हैं। जब ये पूर्व-संचित पदार्थ शेष होने लगते हैं, तब उनका आभास मिल जाता है। उस समय इतनी जोर की भूख लगती है कि उपवास करनेवाला व्यक्ति खाने की इच्छा करने लगता है, जब कि उचित उपवास में भोजन की इच्छा ही नहीं होती है।

उपवासकालीन स्थिति में मनुष्यों के कम महत्त्व के अंगों से पौष्टिक तत्त्व अधिक महत्त्व के अंगों को दिये जाते हैं। योग्य आहार के अभाव में यद्यपि वे कुछ कमजोर होते हैं, फिर भी वे काम करना बिलकुल नहीं छोड़ते हैं। मांस-पेशियाँ दीर्घ काल तक परिश्रम के रुक जाने के कारण एवं योग्य आहार के अभाव में उतनी मात्रा में नहीं पायी जातीं, फिर भी मांस-पेशियों की कोषाओं में कोई विशेष कमी नहीं दिखलाई पड़ती। कोषाएँ छोटी हो जाती हैं, चर्बी बाहर निकल जाती है, किन्तु मांस-पेशियों में अद्भुत दृढ़ता और शक्ति बनी रहती है।

हमारा शरीर सबसे बड़ा निर्णायक है कि सुरक्षापूर्वक कितने दिनों तक उपवास चालू रखा जा सकता है। बिना भोजन का उपवास सरल है, किन्तु बिना पानी का उपवास घातक है। पानी की इच्छा हो या न हो, फिर भी हर हालत में पानी पीना अत्यन्त आवश्यक है।

४. भूख बनाम लालसा

शरीर की जिस यांत्रिक प्रणाली के द्वारा हमारे भीतर भूख की भावना उत्पन्न होती है, उसे समझाने का बहुत प्रयत्न किया गया है, किन्तु सन्तोषजनक सही विश्लेषण और स्पष्टीकरण अभी तक नहीं हो पाया है। लेखक के मतानुसार भूख की भावना की सृष्टि कम-से-कम बड़े पशुओं में, नाड़ी-मण्डल से होती है। इसे एक साधारण सिद्धान्त ही मानना चाहिए, क्योंकि इस विषय में काफी अटकलबाजियाँ चलती रही हैं। भूख की वास्तविक उत्तेजना में और अन्य सभी उत्तेजनाओं में, जिन्हें प्रायः भूल से भूख की संज्ञा दी जाती है, विद्यमान वास्तविक भेद की जानकारी कर लेना परम आवश्यक है।

दुर्भाग्यवश शरीर-रचना सम्बन्धी अन्वेषणों में भूख के ऊपर जो प्रयोग किये गये हैं, वे सभी अपूर्ण रहे हैं; क्योंकि उपवास भी बहुत थोड़े ही समय तक चलाये गये थे; इस शरीर की आहार-संवंधी इच्छाओं और माँगों का सही चित्र नहीं प्राप्त हो सका है। सबसे रोचक बात तो यह है कि आज भी अधिकांश अनुभवी चिकित्सक भूख की परिभाषा विकृत शब्दावली के अनुसार ही प्रस्तुत करते हैं।

उदर-प्रदेश में कुछ क्लेश या पीड़ा के एहसास को भूख कहते हैं। इसे वास्तविक रूप में दर्द ही कहना चाहिए। इसी एहसास से स्वतः क्षुधा-पीड़ा उत्पन्न होती है। इसकी चुभन उदर-प्रदेश में होती है। पेट खाली है, शरीर में कमजोरी है आदि बातें मात्र काल्पनिक

मान्यताएँ हैं। कभी-कभी सिर-दर्द को भी भूख की संज्ञा दी जाती है। सुशिक्षित चिकित्सक भी कभी-कभी ऐसा ही कहते हैं।

सत्य यह है कि भूख एक स्वाभाविक संवेदना है, अस्वाभाविक नहीं और कोई भी स्वाभाविक संवेदना बुरी नहीं लग सकती, भली ही लगती है। भूख को किसी रोग का लक्षण समझना भूल है, जैसे प्यास व अन्य किसी शरीर की स्वाभाविक इच्छाओं को पीड़ादायक या असुविधाप्रद बतलाना भ्रम है। स्वाभाविक भूख की सूचना समूचे शरीर की अवस्था से प्राप्त होती है। भूख की माँग व्यापक होती है। परंतु स्थान-विशेष में वह गोचर होती है। जैसे प्यास की भावना मुख, नाक और गले में केन्द्रीभूत होती है, वैसे ही स्वाभाविक भूख की भावना भी वहीं केन्द्रीभूत रहती है। स्वाभाविक भूख में पीड़ा महसूस नहीं होती। स्वाभाविक भूख में तो आनन्दप्रद उत्तेजना होती है, जिसकी झलक गले, नाक और मुख पर प्रत्यक्ष रूप से दिखलाई पड़ती है। भूखे व्यक्ति को तो केवल खाने की चाह का ही भान रहता है, दर्द और पीड़ा नहीं होती।

झूठी भूख में दूषित उत्तेजनाएँ, उदर-प्रदेश में चुभन, दर्द, दुर्बलता आदि अनेक असुविधाएँ दीखने लगती हैं। स्वाभाविक भूख की स्थिति में ये सब असुविधाएँ नहीं रहती हैं। जिन व्यक्तियों को दिन-रात चौबीसों घण्टे खाने की आदत है, उन्हें कभी भी स्वाभाविक भूख की स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती है। वे ही लोग उन झूठी उत्तेजनाओं को भूल से भूख की संज्ञा देते हैं। उनकी यह दृढ़ धारणा बनी हुई है कि भोजन के पश्चात् उन सभी पीड़ाओं से मुक्ति मिल जायगी। इसीलिए उन्हें सर्वदा भोजन की आवश्यकता महसूस होती रहती है। इस प्रकार से भोजन करने का एक नशा होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक दुर्बलता है। जैसे

पुराने शराबियों को बराबर शराब पीने का नशा रहता है, वैसे ही झूठी अस्वाभाविक भूख से सर्वदा पीड़ित रहनेवाले व्यक्तियों को सर्वदा भोजन करने का नशा ही रहता है।

स्वाभाविक भूख में आहार का चुनाव समुचित होता है, अविवेकपूर्ण नहीं। इसमें लालच से जल्दी-जल्दी निगलने की आदत नहीं होती है, बल्कि समय-समय पर एक विशिष्ट प्रकार के आहार की आवश्यकता लगती है। इसमें आडम्बरपूर्ण स्वादिष्ट भोजन की चाह और लालसा नहीं रहती है। साधारण भोजन से ही तृप्ति और संतोष की प्राप्ति हो जाती है। जो सदा खाते रहने के आदी हैं, किन्तु जिन्हें वास्तविक भूख नहीं है, प्रायः उनकी व्यर्थ की तृष्णाएँ लालायित रहती हैं। वे लोग क्या खाना चाहते हैं, इसका ठीक ज्ञान उन्हें नहीं रहता। वे लोग प्रायः अति उत्तेजनापूर्ण, तीव्र स्वादवाले, कृत्रिम और चटपटे भोजन को अधिक पसन्द करते हैं।

स्वाभाविक भूखवाले लोग ठहर-ठहरकर, आवश्यकता को समझकर ही भोजन ग्रहण करते हैं, जब कि सदा भूखे रहनेवाले निरन्तर खाते ही रहते हैं। ऐसे लोगों को देखने से ही समझ जाइए कि उन्हें कुछ-न-कुछ रोग अवश्य है। यह बात बिलकुल सत्य है कि बहुत-से लोगों को वास्तव में पता नहीं चलता कि वे कब भूखे रहते हैं। जन्म से लेकर खाने की एक ऐसी परम्परा चली आ रही है, जिसमें साधारण व्यक्ति को पता ही नहीं चलता कि वास्तविक और सच्ची भूख कब लगती है। आधुनिक सभ्यता में हरएक देश और जाति में दिनभर भोजन-सम्बन्धी कार्यक्रम ही बनता रहता है। ऐसी स्थिति में सच्ची भूख का सच्चा अनुभव असम्भव-सा हो गया है।

चूँकि सच्ची भूख में भोजन की आवश्यकता सहज रूप से महसूस होती हैं, इसलिए भूख के अभाव में इसकी आवश्यकता नहीं रहती। या तो भोजन की कोई माँग ही नहीं होती या भोजन-सामग्री को आत्मसात् करने की वास्तविक क्षमता नहीं रहती। अतः भूख के अभाव में भी भोजन क्यों करना चाहिए? जो लोग ऐसी स्थिति में भोजन करते हैं, वे प्रकृति-विरुद्ध और अस्वाभाविक कार्य करते हैं। स्वाभाविक भूख की अवस्था में पाचन-प्रणाली पूर्ण रूप से स्वस्थ और सक्षम रहती है और उसमें भोजन को सुगमता से ग्रहण करने और पचाने की काफी शक्ति रहती है। भूख न होने की हालत में पाचन-संबंधी क्रियाएँ मन्द पड़ जाती हैं या रुक जाती हैं। भोजन-संबंधी हमारी आदतें इस हद तक बिगड़ चुकी हैं कि भूख की प्रबल अनिच्छा में भी हम भोजन करने से चूकते नहीं हैं। भूख लगी हो या न लगी हो, किन्तु हम अपनी दिनचर्या समझकर प्रतिदिन भोजन करते हैं। भोजन करने की एक ऐसी सामाजिक प्रथा और रीति बन चली है कि इसे छोड़ और कोई काम ही नहीं दिखाई पड़ता है। भोजन से ही हमारी कुछ चिन्ताएँ दूर होती प्रतीत होती हैं।

हमारे दैनिक जीवन में और भोजन-संबंधी हमारी आदतों के विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण नियम यह होना चाहिए कि चाहे हम बीमार हों या स्वस्थ हों, किन्तु जब तक स्वाभाविक भूख के द्वारा निश्चित भोजन की माँग न हो, तब तक हम अपने उदर में जबरदस्ती कोई भोज्य पदार्थ न ठूँसें।

बड़ी उम्र के लोगों में शराब, तम्बाकू, काफी, सिगरेट, बेहद विषयभोग, मानसिक चिन्ताओं एवं परेशानियों के कारण भोजन के प्रति स्वाभाविक इच्छा कम हो जाती है। ज्वर, पीड़ा और जलन के कारण भोजन की रुचि नष्ट हो जाती है। ऐसी

परिस्थिति में उपवास से बढ़कर दूसरा कोई श्रेष्ठ मार्ग नहीं है, जो उन्हें स्वाभाविक भूख की स्थिति में ला सके। उपवास के बाद श्वास लेने में आनन्द मिलता है, जीभ स्वच्छ हो जाती है और भोजन की सच्ची इच्छा उत्पन्न होती है। केवल आराम और सन्तुलन की अवस्था में ही भोजन करना चाहिए।

जब हम व्याधिग्रस्त होते हैं, तब हमें भूख नहीं मालूम होती है। बीमारी की हालत में शरीर की शक्तियाँ दूसरे कामों में लगती हैं। पाचन-क्रिया को चालू रखने के लिए एक भी शक्ति खाली नहीं रहती है। इसीलिए पाचन-सम्बन्धी कार्य कुछ काल के लिए रोक दिया जाता है। नाड़ी की शक्ति भी निकटवर्ती दूसरे कार्यों में लग जाती है। शरीर के जिन भागों में अधिक रक्त की आवश्यकता होती है, उसे अन्य भागों से लेकर पूरा किया जाता है। पूरी रफ्तार से तेज दौड़ के समय अधिक शारीरिक परिश्रम के कारण हमारी पाचन-प्रणाली की जैसी अवस्था रहती है, ठीक वैसी ही अवस्था बीमारी के समय हो जाती है। भूख बन्द हो जाती है।

अक्सर डॉक्टर लोग कहते रहते हैं कि "शक्ति बनाये रखने के लिए अवश्य खाओ।" यह एक दोषपूर्ण सिद्धान्त है। इसी वजह से बीमारी की अवस्था में भी प्रायः मनुष्यों को भोजन कराया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे खाद्य पदार्थ वमन या अतिसार के द्वारा शरीर के बाहर निकल जाते हैं। अगर इस प्रकार शरीर से वे बाहर न निकल जायँ, तो वे हमारी पाचन-प्रणाली पर भार बन जाते हैं और कुछ दिनों बाद शरीर के भीतर विष पैदा कर देते हैं। ये अनावश्यक पदार्थ शरीर के बाहर निकल तो जाते हैं, पर इनका हमारे शरीर पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता में ये गतिरोध

पैदा करते हैं। आरोग्यदायक शक्तियों को वे दूसरे कार्यों में लगा देते हैं। उन शक्तियों की दक्षता और प्रगति के मार्ग में यों रोड़े अटकाने के बदले उपवास करना सर्वदा लाभप्रद और श्रेयस्कर रहता है। अन्यथा रोगी को नीरोग होने में विलम्ब होता है। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम बीमारी की अवस्था में भूख न होने पर रोगी को कभी भी भोजन न दें।

जब हम बीमार पड़ते हैं तो कभी-कभी यह सोचते हैं कि हमें भोजन करना चाहिए। यह झूठी भूख है और इस समय यदि भोजन कर लेते हैं, तो हमारी तकलीफें और बढ़ जाती हैं।

मैंने बहुत से माता-पिताओं को देखा है कि बीमारियों में भी अपने बच्चों को जबरन् डरा-धमकाकर उनकी इच्छा के प्रतिकूल भी खिलाते रहते हैं। वे बच्चों को नाना प्रकार के प्रलोभन देकर आवश्यकता से अधिक भोजन खिलाते हैं। "माँ के नाम पर खाओ", "डाक्टर कहते हैं कि खाओ" और "अगर नहीं खाओगे तो अच्छे नहीं हो सकोगे"—यह सब हमारा अज्ञान है, जो बीमार बच्चों को भी झूठे सत्य के जाल में फँसा देता है। पुरानी बीमारियों में मालूम होता है कि हम भूखे हैं, किन्तु हम नहीं, हमारी उत्तेजनाएँ भूखी रहती हैं। ऐसी स्थिति में भोजन देना हमारी पाचन-प्रणालियों को नष्ट करना है। भूख के ये सब झूठे लक्षण उपवास करने से नष्ट हो जाते हैं। झूठी अस्वाभाविक भूख में ये लक्षण प्रकट होते हैं और तत्सम्बन्धी पीड़ा भी रहती है, किन्तु वास्तविक भूख में ये सब लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते हैं। उपवास के प्रारम्भिक दूसरे, तीसरे या चौथे दिन ही कृत्रिम भूख के ये सब लक्षण नष्ट हो जाते हैं।

५. उपवास के चार कारण

उपवास करने के अनेक और विविध उद्देश्य हैं। स्वास्थ्य सुधारने, शरीर का वजन घटाने, धार्मिक व्रतादि का पालन करने के लिए हम लोग प्रायः उपवास रखते हैं। धार्मिक एवं संस्कारों से सम्बद्ध उपवास आम तौर पर एक दिन से अधिक समय तक नहीं रखा जाता है। थोड़े समय तक रखे जाने के कारण इसे कठिन उपवास नहीं कहा जा सकता है।

यह बात ठीक है कि हम वजन घटाना चाहते हैं, किन्तु क्या केवल वजन घटाना ही उपवास का मकसद होना चाहिए? क्या वजन घटने के साथ-ही-साथ हमारे शरीर में स्वच्छता, उत्साह, बल और यौवन के लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते हैं?

जर्मनी के अनेक डॉक्टरों का अनुभव है कि बहुत-से रोगी उपवास से अच्छे हो जाते हैं। रोग जड़ से मिट जाता है। लम्बे उपवासों का प्रभाव कहाँ और किस तरह हमारे शरीर की बनावट पर और अंग-प्रत्यंगों पर पड़ता है और वे किस तरह हमारे अंग-प्रत्यंगों को सहायता पहुँचाते हैं, उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। हम जानते हैं कि वजन घटाने के लिए उपवास ही सबसे अच्छा, सुगम, शीघ्र और स्थायी तौर पर लाभ पहुँचाने-वाला साधन है।

यह बड़ी मार्के की बात है कि मोटे वजनी आदमियों को लम्बे उपवास से वे सभी लाभ मिलते हैं, जो उन्हें मिलने चाहिए। वजन कम हो जाने के लाभ को तो उन पर एक अतिरिक्त

उपकार ही समझना चाहिए। उपवास का हमारा उद्देश्य एक हो या अनेक, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

उपवास का दूसरा कारण यह है कि उससे शरीर की क्षति-पूर्ति होती है। उसमें प्रकृति के सूक्ष्म और कोमल पुर्जे काम करने लगते हैं। प्रकृति पोषक तत्त्वों को एक स्थान में संचय करके रखती है, ताकि उसे दूसरी जगह खर्च कर सके। बार-बार परीक्षण करके पाया गया है कि इस तरह का संचय सभी जीवित प्राणियों एवं मनुष्यों के भीतर भी अकसर रहता है। मान लीजिए, एक नल के सहारे पानी स्नानघर के हौज में गिर रहा है। इसी बीच रसोईघर की नली को भी खोल दिया गया और पानी रसोईघर के हौज में भी गिरने लगा है। रसोईघर का नल खुलते ही स्नानघर में पानी के बहाव की मात्रा तुरंत घट जाती है। फिर रसोईघर की नली को बन्द कर दीजिए और देखिए कि पानी के बहाव की मात्रा स्नानघर में फौरन् बढ़ जाती है।

ठीक इसीसे मिलती-जुलती घटनाएँ हमारे शरीररूपी मशीन के भीतर भी घटती हुई देखी जाती हैं। भोजन को पचाने के लिए पाचन-क्रिया में लगे हुए शरीर के अंगों में काफी मात्रा में रक्त-प्रवाह का संचार कराने की जरूरत होती है। फलस्वरूप हमें सुस्ती मालूम होने लगती है और हम सो भी जाते हैं। यदि हम कठिन शारीरिक परिश्रम के कामों में लग जाते हैं, तो हमारे भीतर पाचन-सम्बन्धी क्रियाएँ उतने समय के लिए निश्चित ही रुक जाती हैं।

शरीर की जिस शक्ति का व्यय नियमित रूप से पाचन-संबंधी कार्यों में होता रहता है, उसी शक्ति को उपवास के समय

दूसरी दिशा में मोड़ दिया जाता है और उसीसे शरीर के अन्य जरूरी कार्यों को पूरा कराया जाता है। अतः शरीर के एक विभाग से शक्ति को बचाकर उसका उपयोग दूसरे विभागों में किया जाता है।

उपवास करने का तीसरा कारण शरीरस्थित सभी कल-पुर्जों को विश्राम या आराम पहुँचाना है। पाचन-प्रणाली, ग्रन्थि-प्रणाली, रक्त-संचार-प्रणाली, श्वास-प्रणाली, नाडी-मण्डल इत्यादि विभागों को उपवास-काल में काफी आराम मिलता है। हम जितना अधिक भोजन करते हैं, उतना ही अधिक परिश्रम हमारी मशीनों को उन्हें पचाने में करना पड़ता है। जब हम थोड़ा भोजन करते हैं, तब उन्हें विश्राम करने के लिए कुछ समय मिल जाता है। जब बिलकुल ही नहीं खाते हैं, तब उन्हें पूरा आराम मिलता है। यह समझना कठिन नहीं है कि भोजन न करने पर हमारे मुख व उदर की ग्रन्थियाँ, समूची पाचन-नली, यकृत और पाचन-रस की थैली, हृदय और धमनियाँ इन सभी का भार हलका होने के कारण अधिक मात्रा में उन्हें विश्राम मिलता है। पाचक-रसों को बाहर निकालनेवाले अंगों को छोड़कर, हमारे शरीर की बाकी ग्रन्थियों का दूषित पदार्थों के बाहर निकालने का काम भी कम हो जाता है। साँस लेने की क्रिया भी कम हो जाती है। नाड़ी-मण्डल को भी कम ही काम करना पड़ता है। इन सबका सारांश यही है कि हमारे शरीर के सभी अंगों को उपवास में आराम करने का अच्छा मौका मिल जाता है।

एक सिद्धान्त के अनुसार उपवास के समय मनुष्यों के चया-पचय (शरीर की वह क्रिया, जिससे सभी भोजन जीवित पदार्थों में बदलता है) और निष्क्रियता की तुलना सोनेवाले जानवर

से की गयी है। मांस-पेशियों और पाचन-नली में शिशु की अवस्था में जितनी गतिशीलता पायी जाती है, उससे भी कम हरकत उपवास में करनी पड़ती है। इस सिद्धान्त में भी कुछ सचाई है। किन्तु हमें समझना चाहिए कि उपवास करनेवाला मनुष्य सदा सोता नहीं रहता और गर्भ के भ्रूण की तरह निष्क्रिय व शिथिल भी नहीं रहता। जहाँ तक दिमाग और पेशियों का सवाल है, उपवास करनेवाला मनुष्य जब तक सो न जाय, तब तक शरीर को ढीला और शिथिल रखता है और दिमाग को काफी आराम देता है, फिर भी वह अधिक कार्यशील पाया जाता है। यह बात ठीक ही है कि उपवास में मनुष्य जितना अधिक निष्क्रिय और शिथिल रह सकेगा, उतना ही शीघ्र उसकी अवस्था में उन्नति और सुधार हो सकेगा। इसी विराम की अवस्था में शरीर की कोषाओं का कायाकल्प होता है।

शरीर के भीतरी दूषित पदार्थों को बाहर निकालना उपवास करने का चौथा कारण है। हम जानते हैं कि हमारे शरीर के भीतर भोजन को पचाने की क्रिया बराबर चालू रहती है। भोजन के पोषक तत्त्व मांस, मज्जा, रक्त, वीर्य आदि रूपों में शरीर में मिल जाते हैं और शेष बचे हुए पदार्थ मल, मूत्र, कफ आदि रूपों में हमारे शरीर में जमा रहते हैं। उन्हीं दूषित पदार्थों को हम मल-मूत्र-त्याग आदि दैनिक क्रियाओं द्वारा बाहर करते हैं और पसीने से भी ये दूषित पदार्थ शरीर से बाहर होते रहते हैं। फिर भी कुछ कारणों से सभी दूषित पदार्थों को हम रोजाना बाहर करने में असमर्थ रहते हैं। ये ही बचे हुए पदार्थ धीरे-धीरे एकत्र होकर हमारे शरीर में विष उत्पन्न कर देते हैं। इन्हीं विषैले पदार्थों को शरीर से पूर्ण रूप से बाहर करने के लिए उपवास का सहारा लेना पड़ता है। 'कोलोरेडो' के 'डेनवर' स्थित प्रसिद्ध 'डॉक्टर टिल्डेन हेल्थ स्कूल'

के संस्थापक जे० एच० टिल्डेन, एम० डी० दो पत्रिकाओं के सम्पादक और एवं बहुत-सी पुस्तकों के लेखक हैं। उनका कथन है कि "मैंने ५५ वर्षों तक चिकित्सा-शास्त्र सम्बन्धी अन्वेषण-कार्य निर्जन स्थानों में जाकर किया है। मैं निःसंदिग्ध होकर यह कहने को बाध्य हूँ कि शरीर के दूषित पदार्थों की निकासी के लिए उपवास से बढ़कर दूसरी कोई चिकित्सा नहीं है। यही एक विशिष्ट और विश्वसनीय उपचार है।"

डाक्टर फेलिक्स एल० ओसवाल्ड, एम० डी० भी उपर्युक्त मत से सहमत हैं। उनका कथन है कि "शरीर की भीतरी सफाई के लिए उपवास सबसे उत्तम तरीका है। सालभर में केवल तीन दिन के उपवास से शरीर की सफाई करने और विषैले पदार्थों को नष्ट करने में जितनी सफलता मिल सकती है, उतनी सफलता रक्त-शोधक कड़वी औषधियों के सैकड़ों बोतलों के सेवन से भी नहीं पायी जा सकती है।"

रक्त और तन्तुओं के विजातीय पदार्थों (तलछटों) को शरीर से तेजी से बाहर करने के लिए उपवास के समान और कोई दूसरा साधन नहीं है। केवल थोड़े समय के लिए भोजन न करने से शरीर की सफाई रखनेवाले अंग अपना कार्य-क्षेत्र बढ़ा देते हैं और वास्तविक रूप में शरीररूपी इमारत की पूरी सफाई में लग जाते हैं।

जैसे-जैसे उपवास की अवधि बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे शरीर के भीतर एकत्र हुए दूषित पदार्थ बाहर निकल जाते हैं। शरीर पवित्र और स्वच्छ हो जाता है। पीड़ा कम हो जाती है। देह को आराम मिलने लगता है। किन्तु रक्त और पित्त से दूषित पदार्थों को दूर करने के लिए कुछ और समय की जरूरत पड़ती है।

लम्बी अवधि के उपवास में शरीर के गौण तन्तुओं में अधिक दिनों से एकत्रित विजातीय पदार्थों को भी बाहर निकाल देने का अवसर मिल जाता है।

उपवास के जरिये अंगों को काफी शक्ति मिल जाती है। शरीर के अन्दर मन्थन का काम शुरू हो जाता है। पोषक तत्त्व अलग होकर शरीर के बलवान् तन्तुओं में पहुँच जाते हैं। व्यर्थ के तन्तुओं का एवं पहले से संचित विजातीय द्रव्यों का विघटन निकासी के अंगों में होने लगता है, जिससे वे दूषित पदार्थ शरीर के बाहर सुगमता से निकल जाते हैं।

प्रकृति को शरीर की पूरी सफाई के लिए काफी समय की आवश्यकता पड़ती है। केवल पाचन-प्रणाली को तेज करने से यह काम ठीक से नहीं किया जा सकता। भोजन करते रहने की अवस्था में हमारी इन्द्रियाँ कार्यों के भार से यों ही शिथिल हो जाती हैं। उपवास के समय विश्राम पाने के कारण हमारे अंग-प्रत्यंग काफी शक्तिशाली हो जाते हैं और उसी अवस्था में ठीक से भीतरी सफाई करने की सामर्थ्य उनमें रहती है।

आज से प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पहले सीलवेस्टर ग्राहम ने एक पुस्तक लिखी थी : 'साइन्स ऑफ ह्यूमन लाइफ' (मनुष्य-जीवन का विज्ञान), जिसमें उन्होंने बताया था कि पोषण की तरह मल-निष्कासन भी हमारे जीवन का एक मौलिक कार्य है। जैसे पोषक तत्त्वों का संचय हमारे शरीर के भीतर होता रहता है, वैसे ही दूषित पदार्थों को अलग करने एवं बाहर निकालने की क्रिया भी होती रहती है। जब तक हमारे शरीर के अंग-प्रत्यंग ठीक हैं, तब तक ये दोनों क्रियाएँ लगातार चालू रहती हैं।

जन्म से मृत्यु तक, दिन-रात, सोते-जागते इन दूषित द्रव्यों का शरीर से बाहर निकलना कभी बन्द नहीं रहता है। पालन-पोषण और मल त्यागने की अधिकतर क्रियाएँ शरीर के अलग-अलग अंगों द्वारा की जाती हैं, किन्तु कहीं-कहीं एक ही अंग से ग्रहण और निष्कासन दोनों कार्य किये जाते हैं। अंगों की शक्तियों को दो विभागों में विभाजित किया जाता है: (१) संचय की शक्तियाँ, (२) निष्कासन की शक्तियाँ। किन्तु ऐसे भी समय आते हैं, जब एक विधि दूसरी विधि से अधिक महत्त्व की हो जाती है। शरीर की कुछ निश्चित अवस्थाओं में निष्कासन की महत्ता अधिक हो जाती है और संचय की क्रिया घट जाती है।

एक दूसरा सिद्धांत यह है कि जब हम भोजन करते रहते हैं, तब निकासी का कार्य दब जाता है। हमारा शरीर एक ही समय में संचय और निष्कासन दोनों कार्य नहीं कर सकता है। यद्यपि इस सिद्धांत में सत्य का कुछ अंश है, परन्तु इसे पूरा-पूरा सही नहीं कहा जा सकता है। मल-निष्कासन (इक्सक्रीशन) की क्रिया का हमारे भोजन के पचने के साथ ही साथ जारी रहना जरूरी है, अन्यथा ये दूषित पदार्थ इतनी अधिक मात्रा में इकट्ठे हो जायेंगे और इनके विषैले प्रभाव से मृत्यु भी हो सकती है। केवल कुछ अंशों में 'संचय-क्रिया मल-निकासी को रोक देती है'।

एक और सिद्धांत है कि उपवास-काल में जब शरीर का प्रयत्न कार्यकारी तन्तुओं के लिए पोषक तत्त्वों को जुटाने का रहता है, उसी समय कभी-कभी अधिक मल-निकासी होती है, तो उसे केवल नैमित्तिक (इन्सीडेन्टल) समझना चाहिए। इस सिद्धांत का विचार यह है कि अनावश्यक और कम आवश्यक तन्तुओं को हमारा शरीर तरल पदार्थों में परिवर्तित कर देता है

और इन्हीं पदार्थों को पोषक तत्त्व के रूप में जरूरी तन्तुओं के पोषण में लगाया जाता है और एकत्रित हुए अपदार्थों को रक्त में छोड़ दिया जाता है और उन्हें निकासी के अंगों तक पहुँचाकर शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि पोषक तत्त्वों का संचय करना प्राथमिक कार्य है, निकासी का कार्य गौण।

मैं मानता हूँ कि इस सिद्धांत में सचाई है। कड़ा और विजातीय द्रव्य, खासकर चर्बी एवं तत्सम्बन्धी तन्तुओं में जमा होते हैं और जब इन तन्तुओं को पिघलाया जाता है, तब विजातीय द्रव्य और कूड़े बाहर निकलते हैं। उपवास के समय बहुत अधिक मात्रा में बराबर ये दूषित पदार्थ जो निकला करते हैं, उसका यही कारण प्रतीत होता है।

जीवन की इस बुनियादी और महत्त्वपूर्ण क्रिया (मल-निष्कासन) को दूसरा दर्जा देना क्या बुद्धिमानी का काम कहा जा सकता है ? इसमें मुझे सन्देह है। इन दो क्रियाओं की शक्ति कम-अधिक मात्रा में एक-दूसरे से बराबर सम्बद्ध है। उपवास में पाचन-क्रिया में कम ही शक्ति का व्यय होता है। इससे बची हुई शक्ति का उपयोग दूसरी क्रियाओं में होता है, जो उस समय पाचन की अपेक्षा अधिक जरूरी रहती हैं। इस तरह शरीर अपनी शक्तियों को उस समय बीमारियों को दूर करने एवं शरीर को स्वस्थ बनाने में खर्च करता है।

यह बात ठीक है कि विश्राम की अवस्था में और कम मात्रा में भोजन करने पर भी कूड़े के बहिर्गमन की मात्रा अधिक रहती है। यह सही है कि उपवास, विश्राम और कम भोजन करना—इन तीनों अवस्थाओं में दूषित पदार्थों के निकलने की मात्रा में समा-

नता नहीं रहती है। शरीर के अंगों को जितना ही कम काम करना पड़ेगा, उतना ही अधिक दूषित पदार्थ शरीर से बाहर निकलेगा।

उपवास के प्रारम्भिक और अन्तिम दिनों में, गुर्दों के बढ़ने पर और हृदय-रोग में विजातीय द्रव्यों के त्याग की मात्रा अधिक रहती है। बढ़ी हुई शक्ति भी कुछ अंशों में बहिर्गमन-क्रिया को बढ़ाने में सहायक होती है।

उपवास के समय कैंसर का विकास बहुत अंशों में कम हो जाता है, किन्तु किसी रोगी को कैंसर से बिलकुल अच्छा होते हुए कभी नहीं देखा गया है। डॉक्टर वर्ग का कहना है कि रोग से प्रभावित तन्तुओं का क्षय उपवास में देखा गया है। फिर भी उपवास से सीमित लाभ ही मिलता है। लेकिन छोटे ट्यूमरस (छोटी गिल्टियाँ) प्रायः पूर्ण रूप से फूटकर बैठ जाते हैं। जलोदर सम्बन्धी बहाव, सूजन, दूषित पदार्थों का जमाव इत्यादि की निकासी उपवास के समय बड़ी तेजी के साथ होती रहती हैं। कहीं-कहीं कैंसर को लम्बे उपवास में भी बढ़ते हुए पाया गया है, क्योंकि कैंसर के ट्यूमर अधिकतर एक के नीचे एक दबा रहता है और वे बढ़ते ही जाते हैं और उनका अपना राज्य रहता है। शरीर के अन्य भागों से उनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध भी नहीं रहता है।

६. शक्ति-वृद्धि के लिए उपवास

'अभी मुझे कोई फर्क नहीं मालूम होता है। मैं वैसी ही हूँ, जैसी उपवास प्रारम्भ करने के समय थी। सचमुच मैं अपने को काफी स्वस्थ महसूस कर रही हूँ।'

ये उत्तर उस महिला के थे, जो वजन घटाने के लिए उपवास की प्रारंभिक अवस्था में तीन दिनों से बिना भोजन का उपवास कर रही थी। उक्त महिला को अपनी शारीरिक शक्ति में कोई परिवर्तन नजर नहीं आया। फिर भी उसे सच्चा सुख और शरीर का हल्कापन महसूस हुआ था।

यह कोई असाधारण अनुभव नहीं है। इस तथ्य को हजारों उदाहरणों से पुष्ट किया गया है कि उपवास की लम्बी मीयाद में बहुत-से रोगियों की शक्ति घटने के बजाय और बढ़ी ही है। बहुत-से रोगियों को चिकित्सकों की सलाह पर अच्छे-अच्छे पुष्टिकर, पोषक और बलवर्धक आहार लेने पर भी, दिन-प्रतिदिन दुर्बल, कमजोर और शक्तिहीन होते देखा गया है। ये ही लोग जब उपवास करते हैं, तब उन्हें अक्सर बड़ी तेजी से दिन-प्रतिदिन अधिक ताकतवर और शक्तिशाली होते पाया गया है। लम्बे उपवास में अक्सर कमजोर और दुर्बल व्यक्तियों को सबसे अधिक लाभ प्राप्त करते देखा गया है, भले ही यह बात कुछ अतिशयोक्ति-सी प्रतीत होती हो। उनकी दुर्बलता का कारण भोजन में पौष्टिक तत्त्वों का अभाव नहीं था, वरन् शरीर के दोषों के कारण उन्हें कमजोरी और शक्तिहीनता का शिकार होना

पड़ा था। उपवास में उनके सभी शारीरिक दोष दूर हो जाते हैं—ये दोष दूर होते ही उन्हें अपूर्व शक्ति और बल प्राप्त होता है।

कमजोर व्यक्तियों के विषय में प्रचलित विचार यह है कि 'शरीर बनाओ'। उनकी कमजोरी को देखकर अक्सर उन्हें उपवास करने से भी रोका जाता है। भोजन करते रहने पर जब वे धीरे-धीरे कमजोर और दुर्बल ही होते जाते हैं, तब उन्हें सलाह दी जाती है कि 'अधिक मात्रा में पौष्टिक व स्वास्थ्यवर्धक भोजन करो।' भोजन से शरीर को स्वस्थ, ताकतवर और पुष्ट बनाने की उनकी धारणा काम करती रहती है। स्वस्थ जीवन के लिए इससे बढ़कर हानिकारक और कोई दूसरी बड़ी भूल नहीं है।

रोगी क्षीणकाय और दुर्बल है। उसमें इतनी अधिक कमजोरी है कि वह बिस्तर पर करवट भी नहीं बदल सकता। उसके शरीर में काफी पीड़ा और ज्वर भी है। भोजन को हजम करने की उसमें शक्ति भी नहीं है। ऐसी स्थिति में रोगी को अधिक भोजन कराकर क्या उसके दुःखों को दूर किया जा सकता है? हाँ, अवश्य उसके दुःख दूर हो जायेंगे। पर उसके दुःखों को दूर करने का श्रेय मृत्यु को ही होगा। रोगी की मृत्यु का कारण शक्ति के अभाव में भोजन खिलाना ही माना जाना चाहिए। उपवास करने पर क्या रोगी अच्छा हो जाता है? सर्वदा नहीं, किन्तु ऐसी स्थिति में भोजन कराने की अपेक्षा उपवास में रोगी के बच जाने की अधिक सम्भावना रहती है।

खाद्य-पदार्थों पर आज का मनुष्य इतना निर्भर बन गया है कि उसे थोड़ी-थोड़ी देर से खाने को कुछ मिलना चाहिए, अन्यथा वह दुर्बल और शक्तिहीन बन जायगा। यदि कुछ समय तक

भोजन छोड़ दिया जाय, तो वह मर ही जायगा। हम स्वस्थ हों या बीमार हों, तीन या अधिक बार दिन में हमें भोजन करना ही चाहिए। लेकिन खतरे के हरएक संकेत के प्रति हम लापरवाह रहते हैं; बहरे और अन्धे बन जाते हैं। संकेतों की अवहेलना करके हम खाते रहते हैं। अगर भोजन करने की इच्छा न भी रहे तो भी किसी तरह भोजन करना ही है। अगर जी मिचलाता हो, उल्टी आती हो, तो भी भोजन मत छोड़िए। अगर भोजन हज़म न होता हो, पाचन-क्रिया ठीक से काम न करती हो या रुक गयी हो और भोजन न भी पचे, तो भी किसी तरह खाते चलिए। भोजन के सम्बन्ध में ऐसी ही उल्टी धारणा मनुष्य-समाज में प्रचलित है।

अक्सर देखने में आता है कि इस क्षण रोगी की हालत ठीक है और उसे पथ्य दिया जाता है। फिर दूसरे ही क्षण सुनने में आता है कि रोगी की हालत चिन्ताजनक है। ऐसी घटनाएँ प्रायः देखने और सुनने में आती हैं।

इस सम्बन्ध में एक सुन्दर उदाहरण इस प्रकार है : संसार-प्रसिद्ध अभिनेता मिस्टर जोसेफ जेफरसन् बीमार पड़े थे। उन्हें न्यूमोनिया की बीमारी थी। यह एक ऐसी बीमारी है, जिसमें रोगी को कतई भोजन नहीं दिया जाना चाहिए। न्यूमोनिया शुरू होने के पहले वे कई महीनों तक गैस्ट्रीटिस से पीड़ित हो चुके थे। उनकी बीमारी का वर्णन पहले इस प्रकार किया गया था कि 'अपने मित्र के यहाँ भोजन में असावधानी बरतने के कारण उन्हें बदहजमी की शिकायत हो गयी थी।' न्यूमोनिया की हालत में उन्हें भोजन की कुछ भी इच्छा नहीं थी। उसे पचाने की कोई सम्भावना भी नहीं थी। ऐसी परि-

स्थितियों के बावजूद उन्हें खिलाया गया। जोर देकर उन्हें भोजन कराया गया। मदिरा और मदिरा-मिश्रित उत्तेजक औषधियाँ पिलायी गयीं। उनकी मृत्यु के पश्चात् यह कहा गया कि 'उनका अन्तिम समय आ गया था।'

इस तरह हजारों मनुष्यों को प्रतिवर्ष असमय में ही मृत्यु के मुख में झोंक दिया जाता है। यह सब उसी सिद्धान्त का एक भाग है कि खाते-पीते चलो; सब बीमारियाँ दूर हो जायेंगी। दुःख का विषय है कि संसारभर में आज भी विश्वासपूर्वक उसी सिद्धान्त पर अमल किया जा रहा है।

यद्यपि ऐसी घटनाएँ रोज घट रही हैं, फिर भी इन अनुभवों से कुछ भी सीखना हम लोगों के लिए कठिन हो रहा है। अपनी मूर्खता के कारण रोगी आरोग्य-लाभ नहीं पा रहे हैं। ऐसी हालत में यदि उन्हें बिना अन्न का उपवास कराया जाय, तो उनकी बीमारी दूर हो जायगी और साथ ही साथ उनके हृदय और गुर्दों को काफी आराम भी प्राप्त होगा। हृदय को डिजीटलीस से ताकत पहुँचाते हुए और दर्द और तकलीफों को मोरफिया से दबाते हुए मूर्खता से भोजन चालू कर देने पर रोगी को रोग दुबारा पकड़ लेता है।

उपवास में असाध्य रोगियों को भी शक्ति उपार्जन करते हुए देखा गया है; लम्बे उपवास में उनके रोगों के लक्षण नष्ट हो जाते हैं। ऐसे-ऐसे रोगी देखे गये हैं, जो नियमित भोजन करने की हालत में बिस्तर से उठ नहीं पाते थे, किन्तु सात या दस दिनों के उपवास के बाद बिस्तर से उठ रहे हैं और टहल रहे हैं। जो रोगी रेंग-रेंगकर चलते थे, किन्तु कुछ ही दिनों के उपवास के बाद उन्हें भी दौड़ते हुए पाया गया है।

गत शताब्दी के अन्तिम वर्षों से लेकर इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों तक बहुत-से उपवास करनेवालों ने दिखा दिया है कि उपवास के समय में वे अपने शरीर से कितना अधिक परिश्रम कर सकते हैं। कितने ही लोग दौड़-प्रतियोगिता में विजयी हुए हैं। वजन उठाने में कितनों ने संसार में नया रिकार्ड कायम कर दिया है। कितनों को शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के कार्य अधिक देर तक और अधिक परिमाण में करते हुए देखा गया है। उनके इन असाधारण कार्यों पर हमें गर्व होना चाहिए।

एक बड़े अनुभवी का मत है कि "उपवास करने के पश्चात् मस्तिष्क आश्चर्यजनक रूप से स्पष्ट हो जाता है। शरीर को अपनी शक्ति का पता चल जाता है। दैहिक और मानसिक कार्यों में अधिक रुचि उत्पन्न हो जाती है। शक्ति, स्फूर्ति और स्वास्थ्य का पूरा विकास हो जाता है, जो कि हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

७. उपवास बनाम भुखमरी

आजकल मानव-समाज में उपवास के विषय में बहुत-सी गलत धारणाएँ फैली हुई हैं। ऐसी प्रचलित धारणाओं पर विचार करने के लिए विषय के बढ़ जाने का भय है। फिर भी हमें उनमें से कुछ प्रमुख विचारधाराओं पर अवश्य विचार करना चाहिए एवं तत्सम्बन्धी गलत विचारधाराओं को स्पष्ट भी कर देना चाहिए। उनमें सबसे भ्रमपूर्ण सिद्धान्त, जो समाज में व्याप्त है, यह है कि उपवास के कारण मनुष्यों की मृत्यु हो सकती है।

उपवास के विषय में इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि उपवास का मतलब भूख से मरना नहीं है। उपवास की जिस आखिरी स्थिति में हमें उपवास तोड़ देना चाहिए, उस स्थिति में पहुँचकर भोजन न करने से मृत्यु होना कोई असम्भव बात नहीं है। उपवास में जब शारीरिक कमजोरी के लक्षण प्रकट होने लगते हैं, तब उपवास यों ही तोड़ दिया जाता है। उपवास तभी तक रखा जाता है, जब तक शरीर में शक्ति, बल और साहस का पूरा संचार होता रहता है। लम्बे उपवास सर्वदा किसी अनुभवी चिकित्सक की देख-रेख और निर्देशन में किया जाता है, जो हरएक समय उसका उचित ख्याल रखता है। उपवास करनेवालों की शारीरिक अवस्था, परिस्थिति, रोग, जलवायु एवं अन्य सभी जरूरी बातों पर विशेषज्ञ का विशेष ध्यान रहता है। उन्हें ठीक समय पर उपवास तोड़ने की सलाह दी जाती है। इस तरह उन्हें हर

सम्भव खतरों से सुरक्षित रखा जाता है और भुखमरी की स्थिति से पहले ही उपवास भंग करा दिया जाता है।

इस पुस्तक में उपवास की जो परिभाषा की गयी है, उससे किसी भी मनुष्य की मृत्यु नहीं हो सकती है। उपवास-काल में शरीर में संचित सभी पोषक तत्त्वों के खत्म हो जाने पर भी यदि रोगी को भोजन न दिया जाय, तो उसकी मृत्यु भोजन के अभाव में अवश्य हो सकती है। ऐसी स्थिति में भी मृत्यु जल्दी नहीं हो सकती, क्योंकि शरीर के कम महत्त्व के अंगों से पोषक तत्त्वों की पूर्ति जीवन के अत्यधिक उपयोगी अंगों में होती रहती है।

उपवास-काल में भी अन्य कारणों से मनुष्यों की मृत्यु सम्भव है। जैसे, कैंसर के अधिक बढ़ जाने से, हृदय-रोग के आक्रमण से, ब्राइट्स की बीमारी से एवं अन्य किसी इसी प्रकार की बीमारियों से। इन कारणों से हुई मृत्यु के लिए उपवास को दोषी ठहराना ठीक नहीं है। ऐसे रोगियों की मृत्यु तो बिना उपवास के भी निश्चित ही है। अगर वे खाते रहते तो उनकी मृत्यु बहुत पहले ही हो जाती, किन्तु उपवास के कारण वे कुछ अधिक दिनों तक जीवित रहते हैं।

जब किसी रोगी की उपवास करते हुए मृत्यु होती है, तब समाचार-पत्रवाले बढ़ा-चढ़ाकर, बिना रोगी की अवस्था पर विचार किये तथा रोग के विवरण को बिना पूरा समझे अखबारों में छापते हैं कि उपवास के कारण रोगी की मृत्यु हुई। यद्यपि यह सब मौत प्रायः 'भुखमरी' के कारण होती है, किन्तु साधारण जनता इसका अर्थ भूल से उपवास से जोड़ती है। यदि बड़े-बड़े शहरों में अस्पतालों के भीतर सालभर में रोगियों की कितनी संख्या में मृत्यु हुई, इसका विवरण ब्योरेवार अखबारों में छापा जाय तो साधारण जनता पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा! डॉक्टर

और अस्पताल का नाम, दवाएँ और उपचार करने के तरीके, जो रोगी की मौत के कारण सावित हुए—आदि विषयों का पूरा वयान अखबारों में छापा जाय तो साधारण जनता को दृढ़ विश्वास हो जायगा कि रोगियों को मौत के मुख में पहुँचानेवाली ये दवाइयाँ और ये उपचार करने के गलत तरीके हैं।

यह निश्चित है कि उपवास के द्वारा पूरा स्वास्थ्य प्राप्त करने में काफी असफलता की संभावना है। खासकर उन बीमारियों में, जब कि रोगी का रोग बड़ा भयंकर हो जाता है और वह सब औषधियों से निराश होकर उपवास-चिकित्सा की अन्तिम शरण में आता है। ऐसी स्थिति में रोगी को पूर्ण रूप से स्वस्थ वनाना कोई आसान काम नहीं है। हरएक स्त्री, पुरुष या वच्चे को हर अवस्था में और हर बीमारी में उपवास से सुन्दर स्वास्थ्य प्रदान करना न हमेशा सम्भव है और न उपवास ऐसा दावा ही कर सकता है।

हमारे शरीर की तरह उपवास की भी सीमाएँ हैं। उपवास कोई इलाज नहीं है। शरीर के भीतर रोगों को दूर करने की शक्ति है, चाहे रोगी उपवास करते रहें या भोजन करते रहें। इसलिए अन्तिम समय में रोग को असाध्य वनाकर उपवास की शरण आने से भी रोग विलकुल दूर हो ही जायेंगे, ऐसा नहीं कह सकते।

मृत्यु का खतरा रोगियों को हमेशा भोजन करते रहने की अवस्था में अधिक रहेगा और उपवास-काल में कम। जव रोगी के वचने की आशा नहीं है, तव उसे भोजन खिलाना मानो उसके कष्टों को वढ़ाना है; मरते हुए व्यक्ति के प्रति एक प्रकार की निर्दयता है।

८. रोगों में उपवास

साधारण तौर पर देखा गया है कि वजन घटाने के उद्देश्य से किये गये उपवास में मनुष्य कमजोर नहीं बनते, बल्कि उनके शरीर की ताकत बढ़ जाती है। अब हमें यह देखना है कि क्या उपवास रोगों को दूर करने में लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

उपवास के अनुभवी डॉक्टरों का निश्चित मत है कि सही ढंग से उपवास किया जाय और संतुलित भोजन का नियम पालन किया जाय तो सभी रोग—घातक रोग भी—अच्छे हो सकते हैं। यह अच्छी बात है। फिर भी इस पर विचार करने की आवश्यकता है।

प्रायः उपचार का मतलब यही माना जाता है कि रोगी को पुनः स्वस्थ बनाने का प्रयत्न करना, चाहे रोगों के मूल कारण ज्यों के त्यों बने रहें। इसी आधार पर आजकल की उपचार-प्रणाली आगे बढ़ रही है। बीमारी भले ही बनी रहे, किन्तु दवा के द्वारा, सर्जिकल यंत्रों के द्वारा या मनोविज्ञान के द्वारा रोगी को कुछ समय के लिए राहत मिल जाय, तो काफी है।

उपचार या औषधियों के द्वारा रोगियों को स्वस्थ बनाने की दिशा में बराबर खोज की जा रही है, किन्तु रोगों के मूल कारणों को दूर करने का प्रयत्न नहीं किया जाता। इसीलिए रोगियों का स्वास्थ्य बराबर गिरता जाता है। जब तक शरीर में रोगों का कारण बना रहेगा, तब तक वह स्वास्थ्य के लिए हमेशा एक खतरा ही बना रहेगा। उदाहरणस्वरूप जोड़ों के सूजन का इलाज (आर्थ्रो-

इटिस) कोरटाइजन के प्रयोग से किया जाता है। किन्तु किस कारण से जोड़ों से सूजन पैदा होती है, इस पर जरा भी ध्यान नहीं रखा जाता है। यानी रोगों की उत्पत्ति के कारणों को जानने की कोशिश भी नहीं करते। जब हमें रोग के उत्पन्न होने का कारण ही नहीं ज्ञात हो सका तो हम कैसे समझ सकते हैं कि कारटाइजन से जोड़ों की सूजन ठीक हो जायेगी ? प्रारम्भिक उपचार में कुछ फायदा देखकर बड़ी खुशी होती है कि बड़ी सफलता से उपचार किया गया है। उपचार के कुछ समय बाद ही जब रोग का दूसरा आक्रमण शुरू होता है, तब सिद्ध हो जाता है कि अन्य उपचारों की भाँति यह उपचार भी पूर्णतः असफल रहा।

रोगों का स्थायी इलाज उनकी उत्पत्ति के कारणों को दूर किये बगैर होना असम्भव है। यानी जब तक हम रोगों के फैलने व उत्पन्न होने के कारणों को दूर नहीं कर सकेंगे, तब तक हम रोगी को रोग से जीवनभर के लिए मुक्त नहीं कर पायेंगे। जैसे कैंसर का रोगी अगर सिगरेट पीना बन्द नहीं करेगा, तो हम उसके फेफड़े में कैंसर रोग के फैलाव को कभी भी नहीं रोक सकेंगे।

हमें यह सरल, किन्तु बुनियादी पाठ सीख लेना आवश्यक है कि जब हमारे शरीर में रोगों के उत्पन्न होने के सभी कारण दूर हो जाते हैं, तब हमारा शरीर स्वतः स्वस्थ होने लगता है। रोगों की उत्पत्ति के कारणों के निवारण को ही हम उपचार नहीं कह सकते। इससे इतना ही होता है कि हमारे अंगों की स्वास्थ्य सुधारने की प्रक्रिया चालू हो जाती है। यानी हम उसके मार्ग के सभी रोड़े हटाकर उसकी प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर देते हैं। जैसे एक शल्य-चिकित्सक (सर्जन) घाव के बहुत-से किनारों को एक साथ मिलाकर टाँकों से सिलाई कर सकता

है, किन्तु वह उसे स्वस्थ नहीं बना सकता। वह टूटी हुई हड्डियों के किनारों को एक जगह पर ला सकता है और उन्हें चिपका सकता है, ताकि वे फिर अलग न हो सकें, किन्तु वह हड्डी के दो अंगों को मिला नहीं सकता है। हड्डी का स्वाभाविक मेल जीवन की प्रक्रिया है और वह जीवित अंग-प्रत्यंगों का सहज कार्य है। प्रकृति की प्रक्रिया का मनुष्य न तो अनुकरण ही कर सकता और न उनकी प्रतिलिपि ही तैयार कर सकता है।

हम जानते हैं कि हड्डी तन्तुओं (बोन फार्मिंग मेम्ब्रेन) एवं कोषाओं के निर्माणकारी रेशेदार तन्तुओं, रक्तवाहक नलियों आदि के प्रयत्नों से टूटी हुई हड्डियों के सिरे स्वयं जुड़ जाते हैं और उनकी इस कुदरती बनावट पर बहुत आश्चर्य होता है। मांस, ग्रन्थियाँ एवं चमड़े की तहें ठीक स्थिति में किस तरह बिछायी जाती हैं, यह देखते ही बनता है। इन्हीं प्रक्रियाओं से नये-नये तन्तुओं का निर्माण भी होता रहता है।

बहुत-सी परिस्थितियों में, खासकर घावों में कुशल शल्य चिकित्सकों की सेवाएँ अमूल्य हैं, इसे स्वीकार करता हूँ। फिर भी दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि अधिकतर उनकी 'उपचार-कला' (हीलिंग आर्ट) नर को वानर बनाने जैसी ही कला हैं।

जब हमें पूरा ज्ञान हो जाता है कि हीलिंग (आरोग्यकारक कला) का सम्बन्ध जीवन की प्रक्रियाओं से है, शरीर को नीरोग बनाना हमारे जीवित अंग-प्रत्यंगों का कार्य और जिस तरह से हमारे शरीर में पाचन, श्वास-संचार, मल का निकास और कोषाओं की उत्पत्ति के कार्य होते रहते हैं, उसी तरह से आरोग्य बनाने के कार्य भी बराबर होते रहते हैं, तब हम समझ पायेंगे

कि यों तो बाहरी उपचार होते-जाते रहते हैं; किन्तु आरोग्य बनाने के कार्य तो अनन्त गति से सर्वदा चालू रहते हैं; अतः हम जिसे उपचार समझते हैं, वह वास्तव में कोई उपचार नहीं है।

जैसे हीलिंग स्वतः चलनेवाली नैसर्गिक क्रिया का नाम है, कोई उपचार नहीं, उसी तरह हम कह सकते हैं कि उपवास भी कोई उपचार नहीं है। उपवास घावों को अच्छा नहीं करता, टूटी हुई हड्डियों की सिलाई नहीं करता, तन्तुओं की मरम्मत नहीं करता, विषों को बाहर नहीं निकालता यानी हीलिंग से सम्बद्ध किसी भी प्रक्रिया का काम वह नहीं करता है।

उपवास हीलिंग-प्रक्रियाओं को न तो उकसाता है और न उन्हें सक्रिय ही करता है। हीलिंग की प्रक्रियाएँ स्वतः चलती हैं, सर्वदा तैयार रहती हैं और जरूरत पड़ने पर आरोग्य के कार्य में लग जाती हैं।

अगर मौलिक सिद्धान्तों के रूप में देखा जाय तो निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि उपवास आरोग्य बनाने की समस्त प्रक्रियाओं का एक महत्त्वपूर्ण, आवश्यक और अविच्छिन्न अंग है। जीवन की बहुत-सी अवस्थाओं और परिस्थितियों में रोग-निवारण की प्रक्रिया का यह भी एक भाग है। जब शरीर में भोजन करने की बिलकुल ही इच्छा नहीं रहती और खाये हुए पदार्थ को उगल देते हैं, तब उपवास करने से जबरदस्ती भोजन करना रुकता है और पुनः स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। अतः उपवास को भी हमें स्वस्थ बनानेवाली उन प्रक्रियाओं का एक भाग ही समझना चाहिए।

उपवास एक प्रकार का विश्राम है। आरोग्यकारी प्रक्रियाओं के लिए यह एक सुगम मार्ग तैयार करता है। उपवास बाधाओं

को दूर करता है। इससे शरीर के सभी अंग-प्रत्यंगों को विश्राम प्राप्त होता है। यह कोई उपचार नहीं है, जैसा कि बहुत-से लोग भूल से कहते हैं कि 'फास्टिंग-क्योर' या 'हंगर-क्योर' या 'थेरा-थूरिक फास्टिंग'।

उपवास को 'रेस्ट-क्योर' (विश्राम द्वारा उपचार) भी नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उपवास एक विश्राम की स्थिति है, कोई उपचार नहीं। विश्राम लेने से रोगी अच्छे नहीं होते हैं, बल्कि स्वस्थ पुरुष विश्राम से अच्छे हो जाते हैं। विश्राम लेना हमारे जीवन की एक स्वाभाविक आवश्यकता है। यह हमारे जीवन के लिए उतना ही उपयोगी एवं आवश्यक है, जितना भोजन, हवा, पानी, सूर्य का प्रकाश, व्यायाम और स्वच्छता। उपवास रोगों का उपचार नहीं करता है। किन्तु यह भी स्पष्ट है कि यदि उचित प्रकार से सही निरीक्षण और निर्देशन में उपवास किया जाय तो शरीर को स्वस्थ बनाने की प्रक्रिया में उपवास से सहायता पहुँचायी जा सकती है।

९. उपवास का समय और स्थान

उपवास कहाँ करना चाहिए? कब और कितने समय तक करना चाहिए?

यद्यपि ये सब प्रश्न देखने में बहुत सरल प्रतीत होते हैं, किन्तु ये काफी जटिल समस्याओं को उत्पन्न करते हैं। अतः इनका उत्तर देना उतना सरल नहीं है, जितना कि हम कल्पना करते हैं। हर-एक प्रश्न का सम्बन्ध व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर है। हरएक व्यक्ति की व्यक्तिगत परिस्थिति अलग-अलग होती है।

'कब उपवास करें?' यह प्रश्न जलवायु की परिस्थिति से सम्बद्ध है। यह बहुत ही महत्त्व का विषय है। किन्तु इसके साथ ही एक दूसरा सवाल खड़ा होता है कि कौन कितनी जल्दी उपवास शुरू करे।

उपवास करनेवाले पर प्रायः शीत का असर होता है, क्योंकि उपवास-काल में शरीर की शीत बरदाश्त करने की शक्ति कम हो जाती है। इसीलिए गरम मौसम में उपवास में काफी प्रसन्नता प्राप्त होती है, जो कि शीतकालीन उपवासों में नहीं। इसी सिद्धान्त के आधार पर कुछ लोग गरम-काल के उपवासों का समर्थन करते हैं। इसके प्रतिकूल विचारधारा के विशेषज्ञ डॉ० ओसवाल्ड ने शीतकाल को उपवास के लिए पूर्ण रूप से उचित समय बतलाया है। वे अपने इस मत को शीत-प्रदेशीय पशुओं का उदाहरण देकर पुष्ट करते हैं। इसके अतिरिक्त उनका कहना है कि ग्रीष्म

ऋतु तक रोगी से प्रतीक्षा कराने में, विलम्ब के कारण, रोगी की अवस्था बिगड़ सकती है, समय बीतने पर असाध्य बीमारी अति खतरनाक स्थिति पर पहुँच सकती है।

मेरे विचारों से जलवायु की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकतानुसार, वर्ष के किसी भी समय उपवास प्रारम्भ किया जा सकता है। अनुकूल मौसम की प्रतीक्षा में स्वास्थ्य को खतरे में नहीं डाला जा सकता। अगर कोई घर के भीतर शरीर को गरम रखते हुए शीतकाल में भी उपवास करे तो गरम-ऋतु जैसा आनन्द प्राप्त हो सकता है। अतः उपवास के विषय में यही सिद्धान्त ठीक है कि जब उपवास करने की आवश्यकता हो, तभी उपवास प्रारम्भ कर देना चाहिए। जब कभी शरीर में कुछ गड़बड़ी का आभास हो, भोजन बन्द कर दीजिए। जब तक पूर्ण रूप से स्वस्थ न हो जायँ, तब तक उपवास जारी रखिए। शीत व गरमी की परवाह मत कीजिए। यही उपवास करने का सबसे अच्छा तरीका है।

स्वास्थ्य विगड़ने पर भोजन पचाने की शक्ति का ह्रास हो जाता है। ऐसी सभी अवस्थाओं में कुछ समय तक बिना भोजन का उपवास करने से बड़ी शीघ्रता से स्वास्थ्य सुधर जाता है। रोग के खूब बढ़ने के वाद उपवास करने की कल्पना कभी भी रोगी को अपने मन में नहीं लानी चाहिए। अगर आप छोटी बीमारियों का ठीक समय पर ठीक तरह से उपचार कर लेते तो आपको जीवन में कभी बड़ी बीमारियों का शिकार नहीं होना पड़ेगा। प्रायः सभी रोगी अपच की अवस्था तक भोजन करना जारी रखते हैं। जब वास्तव में भोजन उनके लिए अरुचिपूर्ण और भारस्वरूप बन जाता है, तब वे भूख जगाने के लिए पाचक

औषधियों का सहारा लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनमें बीमारियाँ धीरे-धीरे घर करती जाती हैं। आगे चलकर वे ही असाध्य और जटिल रूप धारण कर लेती हैं।

उपवास बीमारियों को रोकने का एक कार्यक्रम है। शरीर के भीतर बीमारी को भयंकर रूप लेने के पहले शरीर की सफाई करनेवाली नैसर्गिक प्रक्रिया को उपवास के द्वारा विशेष सक्रिय किया जाता है। बहुत-सी भयंकर और असाध्य बीमारियों में भी उपवास का प्रयोग सफलतापूर्वक किया गया है। किन्तु बुद्धिमानी इसीमें है कि रोग को जनमते ही नष्ट कर दिया जाय। इस प्रकार रोग को विशाल रूप धारण करने का अवसर ही न दें।

'उपवास कब करना चाहिए ?' जब आवश्यकता पड़े, तभी किसी कुशल उपवास-चिकित्सक के परामर्श से शीघ्र उपवास प्रारम्भ कर देना चाहिए। किसी बड़े लाभ या तत्काल चमत्कार की कोई बड़ी आशा मन में न रखनी चाहिए। हम लोगों की धारणा कुछ ऐसी हो गयी है कि मात्र एक गोली के सेवन से खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः पा जायेंगे। शरीर के जिस वजन को वर्षों में बढ़ाया है, उन्हें हम घंटों में घटा देने की आशा रखते हैं। खतरनाक बीमारियों के विषय में भी हम वैसा ही सोचते हैं। नासमझ लोगों को यह नहीं मालूम है कि उनका स्वास्थ्य कहाँ तक गिर चुका है, उनके शरीर के अंग-प्रत्यंगों एवं तन्तुओं का कहाँ तक ह्रास हो चुका है। ऐसे लोग ही असम्भव लाभ की कामना करते हैं। जिस व्यक्ति ने चालीस और पचास वर्षों में बीमारी को पाल-पोसकर बढ़ाया है, वह चन्द दिनों या कुछ हफ्तों के उपवास के बाद ही बिलकुल स्वस्थ होने की उम्मीद कैसे रख सकता है ?

जितनी जल्दी हमारी इस प्रकार की गलत धारणाएँ दूर हो जायँ, उतनी ही जल्दी हमारी भलाई सम्भव हो सकती है। उपवास से पुरानी व्याधियाँ धीरे-धीरे दूर होती हैं। उसके लिए काफी धैर्य और समय की आवश्यकता पड़ती है। घातक व्याधियों से पीड़ित व्यक्तियों को, जो काफी लम्बे समय से कष्ट भोगते आ रहे हैं, उपवास में पूर्व-जीवन के गलत ढंग के जीवन-यापन के कारणों से उत्पन्न परिणामों को भोगने के लिए भी तैयार होना चाहिए। अतः उनके प्रयत्नों में काफी धैर्य रखना होता है।

कुछ ऐसी अवस्थाएँ हैं, जिनमें उपवास करने की सलाह नहीं दी जाती है। उन अवस्थाओं में उपवास करना भी असम्भव ही होता है। अधिक दुर्बलता में, हृदय-रोग की बढ़ी हुई हालत में, कैंसर, बहुमूत्र और पुरानी तपेदिक में उपवास से कुछ लाभ नहीं हो सकता है। खासकर यकृत और पेट के कैंसर में कदापि उपवास नहीं करना चाहिए। जहाँ उपवास से अधिक भय लगता हो, वहाँ अच्छा है कि उपवास न किया जाय।

गर्भवती स्त्रियों को केवल विशेष आवश्यकता पड़ने पर ही उपवास रखना चाहिए। खासकर गर्भ की प्रारम्भिक अवस्था में प्रातःकालीन ज्वर में, स्त्रियों के लिए कुछ दिनों का उपवास लाभकारी होता है। इसे छोड़कर गर्भवती स्त्रियों को उपवास नहीं करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि वे एक-दो समय का भोजन त्याग नहीं सकतीं। अगर एक-आध समय भोजन बन्द रखने से उन्हें लाभ पहुँचता हो, तो ऐसे उपवास से गर्भवती स्त्रियों को कोई नुकसान की आशंका नहीं है। इसके अतिरिक्त जिन बीमारियों में उपवास से लाभ अवश्यम्भावी हो, उन बीमारियों

में गर्भवती स्त्रियाँ भी उपवास कर सकती हैं, किन्तु बहुत लम्बा उपवास नहीं होना चाहिए।

छोटे बच्चों को दूध पिलानेवाली माताओं को उपवास नहीं करना चाहिए, क्योंकि उपवास से उनके स्तनों में दूध की कमी हो जाती है। उपवास के बाद भोजन देने पर भी दूध की मात्रा को बढ़ाया नहीं जा सकता। माँ बननेवाली स्त्रियों को एवं छोटे बच्चों की माताओं को काफी अच्छे स्वास्थ्य की आवश्यकता रहती है।

एक बार हाईजिन के विद्यार्थी ने मजाक करते हुए पूछा: "उपवास के विषय में सबसे बड़ी दिक्कत यही रहती है कि कोई स्थान ही नहीं मिलता, जहाँ कि उपवास किया जा सके।"

प्रायः उपवास करनेवाले व्यक्ति का स्थान चारों ओर से कठिनाइयों और बाधाओं से भरा हुआ होता है। उपवास के लिए अपना घर ही एक आदर्श स्थान होना चाहिए, पर अधिकतर ऐसा नहीं पाया जाता है। क्योंकि हमारे समाज में उपवास-सम्बन्धी अज्ञान बहुत है। नगरों में हमारे निवास-स्थान भी प्रायः धुँए और कोलाहल से भरे पाये जाते हैं। वहाँ शुद्ध जल, हवा और पानी प्रायः दुर्लभ रहता है।

शायद सबसे बड़ी बाधा यह है कि घर में उपवास करने पर कुटुम्ब के सदस्यों, सम्बन्धियों, पड़ोसियों और मित्रों का विरोध शुरू हो जाता है। वे लोग उसे अकेले में नहीं रहने देते। वे लोग उपवास करनेवाले से बहस प्रारम्भ कर देते हैं और उसे भोजन करने के लिए बाध्य भी कर देते हैं। वे लोग उसे पागल बतलाते हैं और कहते हैं कि वह स्वयं अपने को मार डालना चाहता है। उसका चेहरा देखो, कैसे बिगड़ रहा है। अगर उसकी मृत्यु नहीं हुई तो यह निश्चय है कि उसका कोई बहुत बड़ा अनिष्ट हो

सकता है आदि। वे लोग क्रुद्ध होकर और कभी-कभी जिद करते हुए उपवास तुड़वाने का अपना प्रयत्न जारी रखते हैं। चिकित्सकों को बुलाकर उसका उपवास भंग कराने की चेष्टा करते हैं। कभी-कभी यह भी होता है कि पुलिस को बुलाकर उसे पागलों के अस्पताल में भर्ती करा देने की धमकी देते हैं। वे लोग चट-पटी जायकेदार चीजों को घर पर बनवाते हैं और उसे दिखा-दिखाकर खाते हैं, ताकि उसके मन में इनके प्रति लालच उत्पन्न हो जाय। इसीलिए मुझे बाध्य होकर अपने रोगियों को दूर एकांत स्थानों में ले जाकर उनके उपवासों की मीयाद पूरी करवानी पड़ी है।

इसके विपरीत जिन परिवारों में सहयोग है, वहाँ घर पर ही शांतिपूर्वक आसानी से उपवास को सफल बनाया जा सकता है।

उपवास शान्तिपूर्वक, शान्तिपूर्ण वातावरण में करना चाहिए जहाँ हवा शुद्ध हो और पीने का पानी शुद्ध, ताजा हो, किसी तरह दूषित न हो। उपवास में सहानुभूति रखनेवाले व्यक्तियों से ही सम्पर्क रखना चाहिए। चूँकि लम्बे उपवास का निरीक्षण सर्वदा किसी अनुभवी उपवास-विशेषज्ञ के संरक्षण में होना चाहिए, अतः उपवास के लिए सबसे उत्तम स्थान वे प्राकृतिक चिकित्सा-संस्थाएँ हैं, जहाँ उपवास-काल में नियमित रूप से उपवास-विशेषज्ञों द्वारा रोगियों की एक-एक गतिविधि पर ध्यान रखा जाता है। ऐसी संस्थाओं में उपवास करने में किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता है। वहाँ के सुन्दर, भव्य प्राकृतिक वातावरण में और कुशल निरीक्षण और निर्देशन में हजारों उपवास करनेवाले उपवास द्वारा स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करते हैं। ये ही संस्थाएँ उपवास करने के लिए एक उत्तम आदर्श स्थान प्रस्तुत करती हैं।

जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य और चिकित्सा दोनों से लाभ पहुँचाया जाता है। उपवास का केवल अर्थ यही नहीं है कि हम उचित समय तक अन्न न सेवन करें, बल्कि उपवास में हम शरीर को विश्राम देते हैं। धूप-स्नान एवं अन्य प्रकार के स्नानों से स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करते हैं। उपवास तोड़ने पर रोगियों के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उन्हें शान्ति और आराम पहुँचाया जाता है। इन सब कार्यों के लिए काफी अनुभव और जानकारी की आवश्यकता पड़ती है।

बहुत-से व्यक्तियों को उपवास करने का अनुभव नहीं रहता है। खासकर उन लोगों को, जो जीवन में पहले-पहल उपवास करते हैं; उनके मन में बड़ी घबराहट, बेचैनी और अनिश्चितता पैदा हो जाती है। उन्हींके कारण उन्हें ज्वर भी हो जाता है। इनके अलावा नयी भावनाओं और उत्तेजनाओं के कारण भी वे काफी घबरा जाते हैं। इन्हीं कारणों से उन लोगों के लिए अनुभवी चिकित्सकों के निर्देशन में संचालित प्राकृतिक संस्थाएँ उपवास करने के लिए सर्वोत्तम स्थान मानी जाती हैं।

कितने समय तक उपवास रखना चाहिए ? किस प्रकार उपवास-काल का निर्धारण किया जाय ? इन प्रश्नों के उत्तर में विद्वानों के अलग-अलग अनेक मत हैं। इन विषयों पर काफी विचार किया जा चुका है। आदर्श और मौलिक रूप में जब तक वास्तविक भूख की स्थिति न आ जाय, तब तक उपवास जारी रखना चाहिए। व्यावहारिक तौर पर यह सर्वदा सम्भव नहीं है। अतः इसका भार अनुभवी चिकित्सकों के ऊपर छोड़ देना चाहिए। कोई भी अनुभवी चिकित्सक पहले से यह नहीं बता सकता कि कितना लम्बा उपवास करना चाहिए और कितने दिनों तक उपवास करना स्वास्थ्य के विचार से सुरक्षित माना जा सकता

है। वे अपने रोगियों से उपवास के रिकार्ड को तुड़वाने के उद्देश्य से उपवास नहीं करवाते हैं।

उपवास का उद्देश्य शक्ति-प्रदर्शन और वाद-विवाद करना नहीं है। उपवास-निरीक्षक अपने रोगियों से किसी खास मकसद से उपवास करवाता है। जैसे शरीर का वजन घटाना, रक्त-चाप को घटाना, शरीर के दूषित पदार्थों को बाहर निकालना, थके हुई नाड़ी-मण्डल को विश्राम देना, उत्साह और नव-यौवन को प्राप्त करना आदि लक्ष्यों को हासिल करने के लिए रोगियों से उपवास करवाये जाते हैं। उपवास-निरीक्षक दिन-प्रतिदिन उन रोगियों की शारीरिक गतिविधियों पर नजर रखता है। जब उनके उद्देश्य पूरे हो जाते हैं या इसके पूर्व कोई खतरा दीखता है तो उपवास तत्काल बन्द करा दिये जाते हैं।

कोई भी जीवित प्राणी अनिश्चित काल तक बिना भोजन के जीवित नहीं रह सकता है। किन्तु शरीर में जब तक अपनी सहायता खुद कर लेने की शक्ति रहती है, तब तक उपवास चालू रखना सर्वदा सुरक्षित माना जाता है। उपवास-काल का निर्धारण करनेवाली यह सीमा-रेखा स्पष्ट रूप से रोगी के शरीर पर दिखलाई पड़ती है और कोई अनुभवी उपवास-निरीक्षक इसे पहचानने में कभी भी भूल नहीं कर सकता। सुरक्षा-रेखा की अन्तिम सीमा पर पहुँचते ही प्रकृति स्वयं इंगित कर देगी कि अब उपवास तोड़ देना चाहिए।

जिन अवस्थाओं में लम्बा उपवास वर्जनीय है अथवा रोगी के पास लम्बा उपवास करने के लिए समय नहीं है, उसे अपने काम पर जाना जरूरी है, ऐसी परिस्थितियों में उपवास-निरीक्षक की सलाह से उपवास तोड़ने में कोई हर्ज नहीं है।

इस नियम के आधार पर उपवास कुछ दिनों तक या कुछ हफ्तों तक या कुछ महीनों तक रखा जा सकता है। सबसे लम्बा उपवास, जो मेरे व्यक्तिगत निरीक्षण में करवाया गया था, नव्वे दिनों का था। उपवास कितना लम्बा हो, इसका निर्णय केवल रोगी के शरीर की स्थिति के आधार पर ही करना चाहिए। कभी अल्पकालीन उपवासों से लाभ होता है, तो कभी लम्बे उपवासों से। कभी खाओ और कभी उपवास करो, ऐसी बदलनेवाली उपवास की योजनाएँ व्यक्ति-विशेष के लिए काफी कष्टप्रद होती हैं। कभी तो रोगियों से लगातार लम्बे उपवास करवाने से उपवास के विषय में उनकी भावना विद्रोही रूप धारण कर लेती है। इसीलिए उपवास-सम्बन्धी इन प्रश्नों का उत्तर सर्वदा विवेकपूर्वक देना चाहिए। चूँकि हमारा क्षेत्र मनुष्यों तक सीमित है और हमारा प्रयोग उन्हींके ऊपर किया जाता है, अतः हमारे हरएक निर्णय में मानवीय भावना का पुट रहना चाहिए। बड़ी बुद्धिमानी और समझदारी से उनको अमल में ले आना चाहिए। आवश्यकतानुसार अपने निर्णयों में हेरफेर भी करना चाहिए।

•

१०. उपवास की उपलब्धि

उपवास का उद्देश्य शरीर का वजन कम करने का हो, या स्वास्थ्य सुधारने का, या शरीर की दूसरी कोई खराबी दूर करने का हो, प्रत्येक अवस्था में उपवास करने पर शरीर में खास सुधार के लक्षण प्रकट होते हैं। ये लक्षण वजन कम करने के उपवासों में अत्यन्त धीमे प्रकट होते हैं।

उपवास-काल में शारीरिक उत्तेजनाएँ अधिकांश भागों में काफी आनन्द पैदा करनेवाली होती हैं। उन्हें भोजन करने की अपेक्षा उपवास करने में अधिक आनन्द मिलता है। बिना खाने की इच्छा के जिसे ठूँस-ठूँसकर भोजन खिलाया गया है, उस शख्स को स्वाभाविक रूप से भोजन से अरुचि हो जाती है। इसीलिए इस प्रकार के रोगियों को उपवास के प्रारम्भ से ही शान्त, सन्तुष्ट और प्रसन्न पाया जाता है, क्योंकि उनको बड़ा आराम महसूस होने लगता है। बहुत-से लोग उपवास में नाममात्र की पीड़ा का अनुभव करते हैं।

उपवास-काल में शरीर में जो स्वाभाविक उत्तेजना, तकलीफ, दर्द और कष्ट होता है, उसका दोष उपवास पर डाला जाता है। कुछ हद तक वह बात ठीक भी है। लेकिन जैसे-जैसे उपवास आगे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे ये सब तकलीफें दूर होती जाती हैं। शरीर के तन्तुओं की विशेष अवस्थाओं के कारण उपवास के प्रारम्भ में ऐसी तकलीफ उत्पन्न होती है। जब इन तन्तुओं की सफाई हो जाती है, तब इन तकलीफों का भी अन्त हो जाता है।

जिन लोगों को नशीली चीजों के सेवन की आदत है, जो धूम्रपान के आदी हैं तथा सर्वदा उत्तेजक खाद्य पदार्थों को खाते-पीते आये हैं, उन लोगों को उपवास के प्रारंभिक दिनों में काफी तकलीफ भोगनी पड़ती है। उक्त पदार्थों के अभाव में उनका जी मचलता है, उलटी होती है। उन्हें क्रोध भी आता है। हफ्तों नींद भी नहीं आती है। शरीर में व्यथा और वेदना भी रहती है। भारी सिर-दर्द से वे लोग पीड़ित रहते हैं। उनके लिए ऐसी पीड़ाओं का होना कुछ दिनों तक स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में उपवास तोड़ना उचित नहीं है। कुछ दिनों के बाद ऐसी स्थिति स्वतः खत्म हो जाती है और रोगी अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है।

कभी-कभी ऐसी परिस्थितियों से बचने के लिए एवं उन्हीं परिस्थितियों में उपवास करनेवाले को कुछ आराम देने की दृष्टि से उन्हें फल वगैरह खिलाये जाते हैं। मेरे विचारों से उन्हें फल आदि खिलाना उचित नहीं है। इससे उपवास में बाधा पहुँचती है, क्योंकि दो-तीन दिन तक इस प्रकार के हलके आहार से आगे चलकर उपवास करनेवाले को दुबारा वे ही तकलीफें भोगनी पड़ती हैं। इस व्यवधान के कारण उपवास करनेवाले को लम्बे उपवास में कई वार बीच-बीच में उपवास तोड़ना पड़ जाता है। इसके कारण उपवास की मीयाद भी बढ़ा देनी पड़ती है। इससे अच्छा यही है कि उपवास करनेवालों को उन मुसीबतों से लड़ने दें। धीरज और साहस से केवल उपवास के प्रारंभ के पाँच दिनों को नियमपूर्वक बिता देने से उनके उपर्युक्त सभी दुखदायी लक्षण सदा के लिए मिट जाते हैं।

उपवास के प्रारम्भ में शरीर की अवस्थाओं में कुछ खास परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन रोगियों की अवस्थानुसार बदलते

रहते हैं। उन शारीरिक परिवर्तनों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे, जीभ भारी हो जाती है; मुख में दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है; और साँस से भी दुर्गन्ध निकलने लगती है; दाँतों में चिपचिपाहट उत्पन्न हो जाती है; मुख, जीभ और साँसों से बुखार के लक्षण प्रकट होते हैं। पुरानी व्याधियों के दूर होते समय उपवास-काल में कुछ दिनों तक ये सब लक्षण रहते हैं। इनके कारण रोगी को कुछ बेचैनी अवश्य रहती है, किन्तु इनसे प्रकट होता है कि शरीर के अंग-प्रत्यंगों की भीतरी सफाई हो रही है। सभी दूषित पदार्थ, कूड़ा, मल-मूत्र, पसीना आदि धीरे-धीरे शरीर से निकलने लगते हैं। फिर उनके निकलते ही जीभ पूरी मात्रा में स्वच्छ हो जाती है, मुख की सफाई हो जाती है और साँस से स्वच्छ हवा निकलने लगती है। अन्त में उचित समय पर रोगी की स्वाभाविक भूख लौट आती है।

उपवास के समय पेशाब साफ और हलका रहता है, किन्तु उपवास में कुछ घंटों के बाद ही पेशाब का रंग बदलता है और पेशाब करने में कुछ तकलीफ भी होने लगती है। किसी-किसी रोगी की पेशाब तो बिलकुल काले रंग की और दुर्गन्धपूर्ण हो जाती है। किन्तु रोगी की अवस्थानुसार एक सप्ताह से लेकर दो सप्ताह तक उचित उपवास करने के बाद पेशाब बिलकुल साफ, स्वच्छ, दुर्गन्धरहित और स्वाभाविक सहज रूप में होने लगती है। पेशाब के उक्त परिवर्तनों से पता चलता है कि गुर्दों को अधिक मात्रा में संचित कूड़े की सफाई करनी पड़ी है, और पेशाब के रास्ते यही कूड़ा बाहर होता रहता है। जब उनकी सफाई पूरी हो जाती है, तब पेशाब अपने स्वाभाविक रंग-रूप में आ जाती है।

शरीर के पूर्व-संचित पौष्टिक तत्त्वों का उपभोग महत्त्वपूर्ण तन्तुओं को करना पड़ता है। उन्हींसे शक्ति पाकर शरीर के कूड़े की सफाई बड़ी तेजी से की जाती है। अनावश्यक तन्तुओं के नष्ट हो जाने से शरीर का अत्यधिक वजन भी कम हो जाता है। इस वजन की गिरावट का कारण भी सफाई-योजना को ही बतलाया जाता है। साथ ही साथ स्वास्थ्य में सुधार के लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं।

उपवास के प्रारम्भिक दिनों में बड़ी तेजी से अधिक मात्रा में वजन में गिरावट देखी जाती है। मोटे व्यक्तियों का वजन पतले व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में और अधिक तेजी से घटता है। कभी-कभी अधिक कूड़ा जमा होने के कारण पतले व्यक्तियों का भी वजन मोटे व्यक्तियों की तरह बड़ी तेजी से अधिक परिमाण में घटता हुआ देखा गया है, किन्तु यह घटाव उपवास के पहले के थोड़े दिनों तक ही होता है। साधारण व्यक्तियों का वजन प्रतिदिन $\frac{3}{4}$ किलो तक और मोटे व्यक्तियों का वजन २ किलो से लेकर ३ किलो तक प्रतिदिन घटता रहता है। किन्तु थोड़े दिनों के बाद वजन घटने की मात्रा में कमी आ जाती है। लम्बे उपवास के आखिरी स्तर पर $\frac{1}{2}$ किलो से भी कम वजन घटता है।

दुर्बल शरीरवाले व्यक्तियों को उपवास से डरना नहीं चाहिए, क्योंकि उनका वजन भी उपवास करने से घटने की जगह अधिक बढ़ जाता है। उपवास में थोड़े आहार से उनके वजन को बढ़ाया जा सकता है। अतः यह सोचना गलत है कि उपवास में केवल मोटे व्यक्तियों को ही लाभ पहुँचता है।

उपवास में कभी-कभी कुछ कमजोरी का अनुभव होता है, क्योंकि शरीर की संचालन-क्रियाओं में कुछ रुकावट आ जाती

है। उपवास में शरीर के अंग-प्रत्यंगों को विश्राम लेने का सुयो
प्राप्त हो जाता है। अतः खास-खास अंग भी अपनी क्रियाअं
को कुछ धीमी गति से चलाते हैं। जैसे हृदय मन्द गति से स्पन्द
करता है। रक्तवाहिनी प्रणाली भी धीमी पड़ जाती है। श्वास
प्रश्वास भी मन्द गति से चलता है। शरीर की ग्रंथियाँ भी अप
कार्यों को कम कर देती हैं। खासकर थका-माँदा शरीर राह
की साँस लेते हुए बिस्तर पर विश्राम करता है। यह वही अवस्
है, जिसे हम चाहते हैं। शरीर की सफाई हो जाने पर शरी
में पूरी ताकत वापस लौट आती है। उपवास में भोजन लेने
बहुत पहले ही ताकतवाली अवस्था प्राप्त हो जाती है। अत
उपवास से प्राप्त शारीरिक लाभों की तुलना में चन्द दिनों क
कुछ कमजोरी नगण्य है।

बहुत-से मनुष्यों को उपवास के विषय में पहले से ही चिन्त
व्याप्त हो जाती है। उपवास में शारीरिक शुद्धता-अभियान क
पीड़ा की आवश्यकता से अधिक मात्रा में वे लोग कल्पना क
लेते हैं। किन्तु उपवास की सभी आवश्यकताओं में ये सब
पीड़ाएँ नहीं होती हैं। बहुत कम संख्या में ऐसे उदाहरण देखने
को मिलते हैं। यह कोई नियम नहीं है। बल्कि अधिकतर
लोगों को इन लक्षणों से पीड़ित होते हुए नहीं पाया गया है।
शरीर की सफाई का काम बिना किसी कष्ट के ही पूरा हो जाता
है। जब कभी कोई दुखदायी स्थिति आ भी जाय, तो उसका
प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करना चाहिए, क्योंकि उससे रोगी का
कल्याण ही होता है।

उपवास में कभी-कभी चमड़े पर फफोले पड़ने लगते हैं, किन्तु
इन्हें भी उसी सफाई-क्रिया का परिणाम समझना चाहिए। कभी

कभी सिर में चक्कर आने लगता है, बेहोशी भी होने लगती है, हृदय-प्रदेश में कम्पन होने लगता है और इस प्रकार के दूसरे लक्षणों के उत्पन्न होने पर भी घबड़ाने की कोई बात नहीं है। इनसे कोई खतरा नहीं रहता है।

सबसे अधिक अखरनेवाली अवस्था उपवास में वमन, जी का मचलन एवं उलटी की अवस्था है। यही कठिन परीक्षा का समय रहता है और इसी काल में शारीरिक दुर्बलता का भी कुछ असर हो जाता है। लेकिन यह शरीर के लिए बड़ा लाभकारी है। मिचलाहट और उलटी कभी-कभी उपवास के प्रथम दिन में या किसी भी समय होने लगती है। साधारण तौर पर कई दिनों तक अन्न ग्रहण न करने के बाद ऐसी अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। कभी-कभी चार या अधिक सप्ताह के उपवास के बाद उलटी की स्थिति आती है।

यह उलटी क्यों होती है? साधारण तौर पर जब अधिक परिमाण में पानी के साथ कफ और पित्त हमारे यकृत में जमा हो जाते हैं, तब यकृत को उनकी सफाई के लिए बहुत अधिक समय तक कार्य करना पड़ता है। कई दिनों तक यकृत से कफ और पित्त को पेट में उँडेल दिया जाता है और फिर उलटी के रूप में ये ही दूषित पदार्थ शरीर से बाहर फेंके जाते हैं। इस कड़ी परीक्षा में उपवास करनेवालों को जो कुछ कष्ट सहना पड़ता है, उसकी क्षति-पूर्ति उन्हें अन्य रूप से प्राप्त हो जाती है। उलटी की अवस्था एक दिन से लेकर अधिक-से-अधिक सात दिन तक रहती है। कै बन्द होते ही शरीर में काफी शक्ति आ जाती है।

अगर अधिक दिनों तक बराबर उलटी होती रहे और पानी हजम न होता हो तो समझ जाइए कि शरीर की अवस्था ठीक

नहीं है। निश्चित ही यह पानी निकलने की (डि हाईड्रेशन
बीमारी का प्रभाव है। इसे एक खतरनाक स्थिति समझ
चाहिए। अतः शीघ्रता से उपवास बन्द करा देना चाहिए। रो
बराबर पानी फेंकने के कारण अधिक कमजोर हो जाता है औ
ऐसी हालत में उसे बहुत दिनों के बाद शक्ति की प्राप्ति होती है
अगर वमन के साथ उपवास करनेवाले को अतिसार (डायरिया
की बीमारी हो जाय, तो उसे और अधिक खतरनाक
समझना चाहिए। इस प्रकार का उदाहरण बहुत ही
देखने में आता है।

अगर उचित समय के भीतर उपवास करनेवाले व्यक्ति
उलटी बन्द न हो जाय तो उसका उपवास भंग करा देना ज
है। यद्यपि यह आसान नहीं होता, क्योंकि जब पानी तक ह
नहीं होता, तब भोजन कैसे हजम किया जा सकता है? ऐ
अवस्थाओं में उन्हें विभिन्न प्रकार के फलों का रस देना चाहि
जिसे वे हजम कर सकें। फिर भोजन देना चाहिए।

अतिसार (डायरिया) प्रायः उलटी के साथ नहीं देखने
आता है, किन्तु कभी-कभी इसका भी आक्रमण होते देखा ग
है। उपवास-काल में किसी भी समय इसका आक्रमण हो ज
है। कभी-कभी उपवास के पैंतीस दिनों के बाद भी इस
प्रभाव होते देखा गया है। कफ, पित्त और अन्य कूड़ा स
एकत्र होकर बाहर निकलते हैं। निःसन्देह इसे भी शुद्ध
अभियान का ही एक भाग मानना चाहिए।

११. नौ बुनियादी शर्तें

केवल भोजन त्याग देना उपवास नहीं कहा जा सकता है। उपवास एक कला है और उपवास करने के नियम भी पूर्ण रूप से वैज्ञानिक हैं। इसलिए उपवास का क्षेत्र काफी व्यापक है, जिसमें कला और विज्ञान दोनों का समावेश है। समय-समय पर उपवास से प्राप्त लाभों की कोई सीमा नहीं रहती। उपवास के लाभों के विषय में जितना कहा जाय, थोड़ा ही है। उपवास में खास तकलीफ नहीं होती है। कभी-कभी खतरे जरूर देखने में आते हैं। उपवास करने की प्रणाली इतनी जटिल है कि इसका भार किसी ऐसे व्यक्ति के ऊपर नहीं छोड़ देना चाहिए, जिसका ज्ञान अधूरा हो, उलटा हो या जिसे उपवास कराने का अनुभव न हो।

साधारण बीमारियों की अपेक्षा पुरानी असाध्य बीमारियों में उपवास के समय काफी कुशल एवं अनुभवी उपवास-विशेषज्ञ के निरीक्षण की आवश्यकता रहती है। जब बीमारी बहुत दिनों के गलत तौर-तरीकों के कारण उत्पन्न होती है, रोगी के शरीर में बहुत अधिक कमजोरी आ जाती हैं और उसके अंग-प्रत्यंगों में काफी दोष आ जाते हैं, तब रोगी के द्वारा लम्बे उपवास करवाने में काफी कुशलता की जरूरत रहती है।

ऐसी परिस्थितियों में अनुभवहीन उपवास-निरीक्षकों के ऊपर निर्भर करने में जोखिम का भय बना रहता है।

स्वास्थ्य का यह एक मौलिक सिद्धान्त है कि बीमारी की अवस्था में भी शरीर की स्वस्थ अवस्था की सारी क्रियाएँ (फीजि-

योलोजी) यथावत् चलती रहनी चाहिए। उपवास-काल में शरीर की आवश्यकता और संचालन-क्षमता के अनुसार क्रियाएँ होती रहनी चाहिए, ताकि शरीर के अंगों को और जीवनदायिनी क्रिया को सुरक्षित और ठीक रखा जा सके। इस सिद्धान्त को स्पष्ट समझ लेने की जरूरत है। जब हम उपवास करते हैं, तब भी जल पीना और श्वास लेना बन्द नहीं करते हैं। आक्सीजन की आवश्यकता सर्वदा बनी रहती है। बीच-बीच में प्यास लगती है और हम पानी पीकर प्यास बुझाते हैं, किन्तु जीवन के आवश्यक तत्त्वों का तो उपयोग करते ही रहते हैं। उपवास-काल में हम पौष्टिक पदार्थों का उपभोग (भक्षण) नहीं करते हैं, किन्तु हमारा शरीर तो अपनी खुराक खींच ही लेता है, जो कि शरीर में पहले से ही जमा रहती है। अतः उपवास में हर समय भोजन की आवश्यकता बनी रहती है और हम उसका उपभोग भी करते रहते हैं।

उपवास का मतलब यह नहीं कि हमारी जीवनदायिनी क्रियाएँ अपना कार्य बन्द कर देती हैं। फिर भी उनका कार्य काफी मात्रा में घट जाता है। भोजन, हवा, पानी, गरमी, धूप, गति, विश्राम, निद्रा, स्वच्छता, मानसिक शांति आदि उपवास-काल में अंगों की संचालन-क्रिया के लिए बहुत आवश्यक तत्त्व हैं।

भोजन-रूपी पोषक तत्त्व को, जिसके द्वारा शरीर के तन्तुओं का निर्माण और पालन-पोषण होता रहता है, हम शरीर के पूर्व-संचित भंडार से प्राप्त करते हैं।

१. तैयारी (प्रिपरेशन)

अक्सर उपवास कराने की बहुत-सी जटिल योजनाएँ बनायी जाती हैं। कभी उपवास प्रारंभ कराने के पहले उपवास करनेवालों

को कुछ समय तक खास प्रकार के भोजन खिलाये जाते हैं, जिनके कारण उनकी अँतड़ियों की पूरी सफाई हो जाती है। कभी उन्हें एक दिन उपवास करना पड़ता है, फिर दो दिन भोजन दिया जाता है। फिर दो दिन उपवास करवाते हैं और चार दिन भोजन देते हैं। इसी प्रकार लम्बे उपवास करने की उन्हें ट्रेनिंग (शिक्षा) दी जाती है। इस प्रकार की सभी योजनाएँ रोगियों के पैसे और समय दोनों को नष्ट करती हैं। रोगियों के उपवास के समय उन्हें भोजन देने का क्या प्रयोजन है ? कुछ भी नहीं। जब कोई प्रयोजन ही नहीं, तब उन्हें बिना किसी रुकावट के पूरे काल तक उपवास करने दें। उपवास की सच्ची तैयारी तो रोगियों की भावना और मन में होनी चाहिए।

अगर आप उपवास के गुण और लाभ को समझ चुके हैं तो हर प्रकार के भय को मन से निकाल दीजिए। उपवास की प्रक्रिया बिलकुल स्वाभाविक है। अतः आसानी से उपवास का अन्त तक पालन कर सकते हैं। उपवास से आप अधिक लाभान्वित होंगे, ऐसी भावना से संतुष्ट होते हुए उपवास करना प्रारम्भ करें। मानसिक चिन्ताएँ और भय उपवास को कठिन और असम्भव बना देते हैं। डॉक्टर क्रेन का नियम था कि रोगी के मन में भय पैदा हो जाता, तो वे उससे कभी भी उपवास नहीं कराते थे, बल्कि उसे भोजन देते थे तथा अन्य उपवास करनेवालों के साथ मिलने-जुलने की अनुमति भी प्रदान कर देते थे। ऐसा करने से उसे दूसरों को देखने, सुनने और समझने का मौका मिल जाता था। दूसरे रोगियों को उपवास से लाभ उठाते देखकर उसके मन में भी साहस उत्पन्न हो जाता था और वह स्वेच्छा से उपवास करने के लिए पुनः

तैयार हो जाता था। सत्य के सामने भय कभी भी टि
नहीं सकता।

२. विश्राम (रेस्ट)

उपवास की प्रक्रिया शरीर-विज्ञान के साधारण सिद्धान्तों प
आधारित है। जीवित अंग-प्रत्यंगों की नियमित आवश्यकताओं
लिए उन्हें किसी भी विजातीय साधनों की जरूरत नहीं रहती
उपवास में उपचार, विशेष व्यवहार और उत्तेजक साधनों
आवश्यकता नहीं रहती है। उपवास का सबसे अधिक महत्त्वपू
तरीका यही है कि मानसिक और शारीरिक कार्यवाहियों
काफी कम कर देना चाहिए, ताकि उपवास करनेवाले व्यक्ति
की शक्ति को सुरक्षित रखा जा सके और उसकी मल-निकास
एवं आरोग्यकारी प्रक्रियाओं को तीव्र गति से चालू कि
जा सके।

उपवास करनेवाले को 'क्षति-पूर्ति' (कम्पेन्सेशन) सम्बन्धी
साधारण सिद्धान्त को ठीक से समझ लेना चाहिए। प्रकृति पहले
से ही एक स्थान पर शक्तियों का संचय करके रखती है, ताकि
उसका उपभोग दूसरे स्थानों में किया जा सके। उपवास में उ
शक्तियों को अनावश्यक कार्यों में न खर्च कर, प्रकृति
शरीर के स्वास्थ्य-निर्माण और मल-निकासी के कार्यों में व्यय
करती है।

उपवास में श्रम के कार्य रोककर शरीर को विश्राम दे
चाहिए। चारपाई पर आराम से लेटकर शरीर को ढीला छो
देना चाहिए। क्योंकि अगर हम शारीरिक परिश्रम के कार्य करें

रहेंगे तो हमारी शक्तियों का बहुत बड़ा भाग उधर ही व्यय होता रहेगा और अन्य आवश्यक कार्यों के लिए कुछ भी शक्ति का संचय न कर पायेंगे। अतः उन शक्तियों को बचाकर नाड़ी-मंडल को शक्तिशाली बनाना आवश्यक रहता है।

मानसिक शांति के लिए सभी मानसिक कार्यों को कम कर देना चाहिए। उत्तेजना पैदा करनेवाले विचारों से बचना चाहिए। वाद-विवाद से बचना चाहिए, क्योंकि इससे मन की शान्ति भंग होती है। हानिकर झगड़ों व झंझटों से उलझना ठीक नहीं रहता है। भावनाओं की शांति में मानसिक शांति निहित है। शांति बनाये रखने के लिए उसे बराबर प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए शांत और निर्जन स्थान बहुत अच्छा रहता है। पढ़ने, चलचित्र देखने एवं आँखों को कष्ट पहुँचानेवाले हरएक कार्य से दूर रहना चाहिए। शोरगुल से बचना चाहिए। इस सबसे काफी शक्ति का संचय किया जा सकता है। विश्राम का मतलब निष्क्रियता और गतिहीनता नहीं है।

विश्राम कोई उपचार नहीं है। किन्तु स्वास्थ्य के लिए विश्राम बहुत जरूरी है। जिनके शरीर के भीतर अधिक कूड़ा जमा हो गया है, उनके लिए विश्राम अधिक जरूरी है। शरीर के अंगों को कोई टॉनिक नहीं चाहिए, मादक सुरा नहीं चाहिए, उसे सबसे अधिक आवश्यकता है विश्राम की। खासकर उन व्यक्तियों के लिए, जो मादक द्रव्यों के सेवन से नपुंसक बन चुके हैं, भोजन और विषय-वासनाओं की अतिशयता से अपना स्वास्थ्य खो चुके हैं, बीमारियों के कारण जिनकी मानसिक शांति नष्ट हो चुकी है, विश्राम से बढ़कर सुख देनेवाली कोई दूसरी वस्तु नहीं है।

३. कार्यशीलता (एक्टिविटी)

उपवास-काल में उपवास करनेवाला व्यक्ति विश्राम क रहता है, लेकिन शरीर को जीवन की स्वाभाविक संचालन-क्रि जारी रखने के लिए प्रयत्न करना ही पड़ता है। अतः परिश्र करनेवाले अंगों के आहार और कार्य में ठीक संतुलन रख चाहिए। कुछ उपवास-विशेषज्ञ उपवास करनेवालों को लम्बे भ्रम की और नाना प्रकार के व्यायाम करने की अनुमति देते हैं वजन घटानेवाले उपवासों में उपवास-निरीक्षकों के निर्देशन हल्के व्यायाम कराये जाते हैं। दूसरे प्रकार के उपवासों में किसी भी प्रकार का व्यायाम करना उचित नहीं है। इसमें संचित पोषक तत्त्वों एवं शक्तियों को व्यर्थ खर्च करना पड़ जाता है। उपवास काल में उतने ही कार्य किये जायँ, जितने के लिए शक्ति हमारे शरीर में पहले से संचित है। अतः उपवास की अवस्था में कम से-कम कार्य किया जाना चाहिए। हमें विश्राम की आवश्यकता रहती है, शक्ति के अपव्यय की नहीं।

४. उष्णता (साधारण गरमी)

उपवास-काल में ठंडक को बरदाश्त करने की शक्ति क्षीण पड़ जाती है। अक्सर ठंडी के कारण उपवास करनेवालों को कष्ट उठाना पड़ता है। ठंडक के कारण कूड़े की निकासी के कार्य में रुकावट पैदा होती है। उपवास करनेवालों की परेशानियाँ अधिक बढ़ जाती हैं। ऐसी हालत में सुरक्षित पोषक तत्त्वों का खर्च शीघ्रता से बढ़ जाता है। अतः उन्हें साधारण गरम रखना चाहिए। खासकर रोगी के पैरों को गरम जरूर रखना चाहिए। ठंडे पैरों के कारण प्रायः रोगी को अच्छी नींद नहीं आती है।

५. पानी

उपवास करनेवाले व्यक्तियों को काफी देर से प्यास लगती है। उतनी अधिक बार प्यास नहीं लगा करती, जितनी भोजन करते रहने की अवस्था में लगती है। प्यास की स्वाभाविक माँग की पूर्ति शुद्ध जल से करनी चाहिए। धातु-मिश्रित और दुर्गन्ध-युक्त पानी नहीं पीना चाहिए। झरने का मीठा जल, वर्षा का पानी, डिस्टील्ड या फिल्टर्ड पानी या किसी भी प्रकार का विशुद्ध जल पीना उचित बतलाया जाता है।

प्यास लगने पर ही पानी पीना चाहिए। अधिक मात्रा में जल पीने से कोई लाभ नहीं है। यद्यपि यह बात ठीक है कि अधिक पानी पीने से गुर्दों से अधिक मात्रा में तरल द्रव्य बाहर होते हैं, किन्तु इसके माने यह नहीं हैं कि अधिक परिमाण में शरीर के कूड़े बाहर होते हैं। बल्कि इसके कारण शरीर के कूड़े की निकासी घट सकती है।

ग्रीष्म ऋतु में ठंडा जल पीने की इच्छा होती है। ठंडा जल पीना ठीक है, किन्तु इसके कारण आरोग्य बनाने की प्रक्रिया धीमी व मन्द पड़ जाती है। बरफ का पानी पीना बुद्धिमानी का काम नहीं है। ठंडे पानी की जगह गरम जल पीना अच्छा है। मुझे कोई कारण नहीं दीखता है कि 'उपवास में गरम जल क्यों नहीं पिलाया जाता है।'

६. स्नान

दोनों अवस्थाओं (भोजन करने और उपवास करने) में शरीर की सफाई रखना बहुत ही जरूरी है। जितनी बार आवश्यक हो, उतनी बार प्रतिदिन स्नान करना चाहिए। किन्तु

उपवास-काल में स्नान का तरीका ऐसा होना चाहिए, जिसमें कम शक्ति व्यय हो।

(अ) स्नान थोड़े समय तक करना चाहिए। उपवास करने वाले को शावर या टब में काफी देर तक स्नान नहीं करना चाहिए। पानी में काफी देर तक डूबे रहने से शरीर दुर्बल हो जाता है।

(आ) स्नान का जल कुनकुना गरम होना चाहिए, क्योंकि ठंडे और तेज गरम जल से स्नान करने में अधिक शक्ति का व्यय होता है। पानी और शरीर दोनों का तापमान बराबर रहना चाहिए। इससे कम शक्ति व्यय होती है। याद रहे कि स्नान शरीर की सफाई के लिए किया जा रहा है, चिकित्सा के रूप में नहीं।

(इ) अगर उपवास करनेवाला बहुत कमजोर हो और स्नान करने में असमर्थ हो तो उसे किसी सहायक के द्वारा बिस्तर पर ही 'स्पंज बाथ' दिया जाय।

७. धूप-स्नान

जैसे पौधों और जानवरों के जीवन के लिए सूर्य की रोशनी बहुत जरूरी है, वैसे ही उपवास करनेवालों के लिए भी वह बहुत ही उपयोगी है। इसे कोई इलाज नहीं मानना चाहिए। कैलशियम और फासफोरस के कारण धूप-स्नान से मांसपेशियों को अधिक बल मिलता है। जीवन की स्वाभाविक प्रक्रियाओं को भी इससे काफी लाभ पहुँचता है।

नियमित रूप से धूप-स्नान करने में शारीरिक शक्ति का भी कम ह्रास होता है। शरीर को काफी विश्राम भी मिलता है।

शीतकाल में सुबह धूप-स्नान करना चाहिए, गर्मी में सूर्यास्त के समय, अगर मौसम में ठंडक रहे। अगर मौसम अच्छा हो, तापमान सुखदायी हो, तो दिन के किसी भी समय धूप-स्नान किया जा सकता है।

प्रारम्भ में शरीर को खोलकर पाँच मिनट तक सामने के हिस्सों पर और पाँच मिनट तक पीछे के हिस्सों पर धूप का सेवन करना चाहिए। दूसरे दिन छह मिनट का स्नान करना चाहिए। इस तरह एक-एक मिनट रोजाना बढ़ाते रहना चाहिए, किन्तु बाजू का स्नान आध घंटे से अधिक नहीं होना चाहिए।

जब कभी उपवास करनेवाले को कमजोरी या घबराहट का आभास हो, तो उसे धूप-स्नान का समय घटा देना चाहिए और अतिरिक्त श्रम कदापि नहीं करना चाहिए।

८. पेट का मल निकालना

कभी-कभी जोर दिया जाता है कि उपवास में आँतों, गुर्दों और तत्सम्बन्धी चमड़ों को काफी सक्रिय रखना जरूरी है, जिससे शरीर का मल तन्तुओं के द्वारा तरल द्रव्यों में परिवर्तित होकर बाहर निकल जाय। इसीलिए आँतों की सफाई के लिए प्रतिदिन एनिमा या सैलाइन पर्जेज का व्यवहार किया जाता है। अधिक मात्रा में पानी पीने की सलाह दी जाती है। मूत्रवर्धक पदार्थों का सेवन कराया जाता है। गुर्दों को सक्रिय बनाया जाता है। चमड़े को सक्रिय बनाने के लिए बाष्प-स्नान का प्रयोग कराया जाता है।

मेरे विचार से यह बिलकुल गलत सिद्धान्त है। ये सभी दबाव डालनेवाले साधन उपवास करनेवालों के लिए अनावश्यक

ही नहीं, बल्कि वास्तव में हानिकर भी हैं। उपवास गुर्दों को जितना सक्रिय और कार्यकारी बना सकता है, उतना अन्य कोई साधन नहीं। आँतें उपवास में यों ही साफ और खाली रहती हैं, अतः एनिमा वगैरह की कोई जरूरत ही नहीं पड़ती है। उपवास में, उन्हें काम के अभाव में काफी विश्राम रहता है। चमड़ा कोई निकासी का अंग नहीं है, अतः उन्हें बाष्प-स्नानों की क्या जरूरत है? इन सबके कारण उपवास करनेवालों की कमजोरी ही बढ़ती है। इनके द्वारा निकासी के कार्यों में कोई वृद्धि नहीं होती है। अतः इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

९. यातनाएँ

बिगड़े हुए स्वास्थ्य में और कठिन शारीरिक पीड़ा में उपवास चालू नहीं रखना चाहिए। ऐसी अवस्थाओं में पाचन और संचय प्रणालियाँ बड़ी कमजोर रहती हैं। जितना अधिक कष्ट होगा, रोगी उतना ही कम भोजन कर पाता है और कम पचा सकता है। अतः जब यातनाएँ दूर हो जायँ, तब रोगी को भोजन खिलाना चाहिए।

१२. उपवास की समाप्ति

स्वाभाविक भूख का आभास होने पर उपवास समाप्त कर देना चाहिए। वास्तव में उपवास समाप्त करने का सही समय यही है। स्वाभाविक भूख जगने पर जीभ स्वच्छ हो जाती है, साँस अत्यन्त सहजता से चलने लगती है और मुख का स्वाद भी मीठा और स्वच्छ हो जाता है। इन सभी संकेतों से पता चलता है कि शरीर ने स्वयं भीतरी सफाई पूरी कर दी है और अब वह भोजन करने के लिए प्रस्तुत है।

प्रायः मुँह में पानी आना क्या भूख की बलवती इच्छा का द्योतक है ? क्या स्वाभाविक भूख हमेशा जग सकती है ? हमेशा तो शायद ही जग सकती है। ऐसी बीमारियों में, जिनमें मृत्यु अवश्यंभावी है, शायद ही कभी स्वाभाविक भूख वापस लौटती है। जैसे, अन्तिम अवस्था पर पहुँची हुई तपेदिक, असाध्य कैंसर, भयंकर हृदय-रोग, मृत्यु की प्रतीक्षा करनेवाली अन्य सभी बीमारियाँ। अन्य सभी बीमारियों में उपवास करनेवालों को ठीक समय पर निश्चित रूप में स्वाभाविक भूख जग जाती है।

देखने में आता है कि प्रायः उपवास-काल में, शरीर में संचित पोषक तत्त्वों के काफी मात्रा में रहने पर भी समय के पहले ही स्वाभाविक भूख की स्थिति प्रकट हो जाती है। सांघातिक बीमारियों में अक्सर यह बात अधिक सही होती है। एक या दो दिनों के भीतर ही बीमारियों के सभी लक्षण नष्ट हो जाते हैं और रोगियों की भोजन करने की स्वाभाविक इच्छा हो आती

है। यद्यपि उनके शरीर में पूर्वसंचित पोषक तत्त्व काफी मात्रा रहते हैं, जिनके बल पर वे और भी कई दिनों तक उपवास क सकते हैं।

दो सप्ताह तक उपवास करनेवालों को प्रायः हर समय भू की पीड़ा प्रतीत होती है। उस समय यदि उन्हें ठीक से नियन्त्र में नहीं रखा गया तो निश्चय ही वे भोजन कर लेंगे। यदि उ समय ठीक से नियन्त्रण रखें और भूख की भावना को दबा रखें, तो कुछ दिनों के बाद उनमें स्वाभाविक भूख निश्चि जागती है।

स्वाभाविक भूख के पूर्व भोजन करने से उपवास-काल में प्राप्य समस्त लाभ नष्ट हो जाता है। उपवास-सम्बन्धी संस्थाओं में सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि स्वाभाविक भूख जगने तक उन्हें काफी नियन्त्रण में रखा जाता है। रोगियों के पथ्यों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उन्हें अधिक या असमय में खाने की अनुमति नहीं दी जाती है। अपने घरों में उपवास करनेवालों को अधिक आत्म-नियन्त्रण की आवश्यकता रहती है; नहीं तो उपवास को समाप्ति-काल तक ले जाना बहुत कठिन हो जाता है वहाँ असमय में या अधिक भोजन करने का भय सर्वदा बना रहता है।

कुछ लोग उपवास से शरीर को क्षीण होते देखकर शिकायत करते हैं और परेशानी जरा कम हुई तो फौरन् उपवास समाप्त कर देते हैं। वे सोचते हैं कि बाकी स्वास्थ्य-सुधार तो भोजन पर नियन्त्रण रखकर आगे चलकर ठीक कर लेंगे। लेकिन यह धारणा गलत है। परिणाम यही होता है कि उन्हें आगे चलकर अपने किये पर पछताना पड़ता है।

कुछ लोग छुट्टियों के समय उपवास करते हैं। समयाभाव के कारण उन्हें असमय में उपवास समाप्त कर काम पर जाना पड़ता है। कुछ लोग अपने व्यवसाय और कुटुम्ब से बहुत थोड़े दिनों के लिए अलग रह पाते हैं। समय के पूर्व उपवास समाप्त करने के हजारों व्यक्तिगत कारण पाये जाते हैं। छोटे या अल्पकालीन उपवासों का परिणाम प्रायः निराशाजनक होता है। उपवास ठीक से पूरा होता है तो पूरी सफलता मिलती है, और पूरा न हो पाये तो केवल असफलता।

अधूरे कार्य को कार्य ही नहीं कहना चाहिए। स्वास्थ्य का सुधार प्रतिदिन के प्रयत्न से होता है। कुछ दिनों का भोजन त्याग देने से ही स्वास्थ्य नहीं सुधर जाता।

यद्यपि उपवास किसी भी सुलभ खाद्य पदार्थ लेकर समाप्त किया जा सकता है, किन्तु उपवास समाप्त करने का सबसे सुरक्षित तरीका फलों का रस पिलाना है। उपवास तोड़ते समय फलों का रस या सब्जियों का रस पिलाना चाहिए। फल व सब्जियों के गुण व विटामिन को सुरक्षित रखने के लिए ताजा रस पिलाना उचित है।

स्वाभाविक भूख लौटने पर उपवास को, दिन में या रात्रि में किसी भी समय, समाप्त किया जा सकता है। अगर स्वाभाविक भूख की वापसी के पहले किसी कारणवश उपवास समाप्त कर दिया गया हो, तो उसे दिन के किसी भी समय दुबारा चालू किया जा सकता हैं।

जितना अधिक लम्बा उपवास हो, उतने ही अधिक समय तक उपवास की समाप्ति पर रोगियों का सावधानीपूर्वक खयाल करना चाहिए। मेरी योजना इस प्रकार है। मान लीजिए, बीस

से अधिक दिनों तक उपवास किया गया है, तो उपवास समाप्त रहने के प्रथम दिन आधा गिलास फल का रस हरएक घंटे पर दिया जाता है। सुबह ८ बजे से प्रारम्भ कर शाम को ६ बजे तक उन्हें फलों का रस दिया जाता है। यह तालिका केवल उन्हीं उपवासों के लिए है, जिन्हें उचित समय के पहले समाप्त कर दिया जाता है। स्वाभाविक भूख जगने पर तो किसी भी समय पथ्याहार दिया जा सकता है।

दूसरे दिन मैं रोगियों को प्रति २ घंटे के बाद एक गिलास फल का रस पीने के लिए देता हूँ। यह उतना ही रहता है, जितना कि पहले दिन दिया जाता है, किन्तु यहाँ अधिक परिमाण में और अधिक समय के अन्तर से दिया जाता है। कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि हम उन्हें आवश्यकता से अधिक मात्रा में खिला रहे हैं। अगर रोगियों की ऐसी शिकायत हो, तो उन्हें एक या दो बार का पथ्याहार बन्द कर देना चाहिए। यह कोई नियम नहीं है कि उन्हें अनिवार्य रूप में इतना भोजन करना ही चाहिए।

तीसरे दिन उन्हें प्रातःकालीन नाश्ते के रूप में खाने के लिए मैं एक सन्तरा (कमला नीबू), दोपहर के भोजन में दो सन्तरे और सायंकालीन भोजन में तीन सन्तरे देता हूँ। सन्तरे के बदले उसी परिमाण में अंगूर या ताजा और पका हुआ टमाटर या कोई मौसमी रसदार फल भी उन्हें दिया जा सकता है। हर अवस्था में उन्हें अधिक भोजन से बचाना उचित है। ये फल काफी पके हों, ताजा हों और जहाँ तक सम्भव हो, उन्हें खूब कूच-कूचकर खाना जरूरी है। फल निगलने की आदत छोड़ देनी चाहिए।

चौथे दिन सुबह नाश्ते में नीबू या चकोतरा अल्प मात्रा में, एक या दो दूसरे प्रकार के ताजा फल, या मौसमी तरबूज

रोगियों को दिया जाता है। दोपहर के भोजन में सब्जी का सलाद, जिसमें नमक, तेल, सिरका, नीबू का रस, पकाया हुआ कोई पदार्थ आदि का मिश्रण नहीं किया जाता है। इसके अतिरिक्त कोई एक उबली सब्जी आवश्यक है, जिसमें अनाज का सत्त्व न रहे। संध्याकालीन भोजन में मैं पुनः उन्हें फल खाने को देता हूँ। यह हलका होता है। किन्तु प्रातःकालीन नाश्ते से कुछ अधिक परिमाण में होता है।

पाँचवें दिन सुबह नाश्ते में फल, सलाद और पकायी हुई दो हरी सब्जियाँ, एक भूना हुआ आलू अथवा कुछ प्रोटीन दिया जाता है। दोपहर व सायंकाल के भोजन में पुनः फलाहार ही दिया जाता है। जो शाकाहारी नहीं हैं, उन्हें मैं एक गिलास खट्टा दूध देता हूँ।

छठे दिन पथ्याहार की मात्रा कुछ बढ़ाकर पाँचवें दिन की तरह ही दिया जाता है। इस प्रकार एक सप्ताह के पश्चात् उपवास करनेवाला व्यक्ति स्वाभाविक भोजन करने की अवस्था में आ जाता है। सुबह, दोपहर और सायंकाल के आहार के अतिरिक्त और कुछ बीच में खाने की अनुमति उन्हें नहीं दी जाती है। इस प्रकार शरीर के वजन में कुछ वृद्धि हो जाने के पश्चात् उपवास करनेवाले व्यक्ति अपनी इच्छानुसार एक समय का भोजन या दो समय का भोजन करने की दैनिक योजना बनायें। यह उनके लिए सर्वदा लाभकारी सिद्ध होगी।

भोजन करने के कम-से-कम एक सप्ताह तक उन्हें बिस्तर पर लेटकर विश्राम चालू रखना चाहिए। शरीर से धीरे-धीरे काम लेना चाहिए। क्योंकि पथ्याहार के साथ ही साथ शारीरिक परिश्रम का काम शुरू कर देना ठीक नहीं है। उस समय वह उतना

शक्तिशाली और सक्षम नहीं रहता है, जितना वह अपने को मानता है। यदि शरीर का वजन बढ़ाने के उद्देश्य से उपवास किया गया हो, तो उस समय के परिश्रम के कारण शरीर के वजन की वृद्धि में रुकावट आ जाती है।

बहुत से व्यक्ति पथ्य लेते ही अधिक दूर तक टहलना चाहते हैं। इससे स्वास्थ्य-सुधार में बाधा पड़ जाती है और उनके शरीर का वजन स्थिर हो जाता है, आगे नहीं बढ़ पाता है। अतः उन्हें जल्दबाजी न करके केवल स्वाभाविक रूप से ही कार्यशील बनना चाहिए। यदि दो सप्ताह का उपवास किया गया हो तो उपवास के अन्त में प्रथम दिन हर दो घंटे बाद एक गिलास फल का रस सेवन करना चाहिए। इसी प्रकार आगे का प्रोग्राम भी बना लेना चाहिए। अल्पकालीन उपवासों में बहुत कम सावधानी की आवश्यकता रहती है। ऐसे उपवासों में समाप्ति के साथ ही साथ शारीरिक क्रियाएँ शीघ्रता से प्रारम्भ की जा सकती हैं।

वास्तव में जिन व्यक्तियों का स्वास्थ्य काफी अच्छा है उनके लिए ये सब बातें ठीक हैं। यदि छोटे उपवास तोड़ने के बाद और अधिक विश्राम की जरूरत हो और हलका भोजन जरूरी हो, तो उन्हें अपने उपवास-निर्देशक के परामर्श और निर्णय को मानना चाहिए।

सभी उपवास करनेवालों को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सलाह यही दी जाती है कि उन्हें उपवास-समाप्ति के बाद धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए।

१३. स्वास्थ्य-रक्षा और उपवास

जरूरी नहीं कि जीवन में एक बार उपवास कर लेने से सर्वदा के लिए स्वास्थ्य सुन्दर व उत्तम बना रहे। हमेशा स्वस्थ बने रहने के लिए स्वास्थ्य पर सदा ध्यान रखना जरूरी है। उपवास के कारण शरीर का वजन एक बार कम हो जाने से स्थायी रूप में कम ही रहेगा, यह भी जरूरी नहीं है। आप अपनी मर्जी के मुताबिक, बिना किसी परहेज के, भोजन करते रहें और स्वप्न देखते रहें कि आप सुडौल बने रहेंगे, यह कैसे सम्भव हो सकता है?

अपने स्वास्थ्य को सुन्दर बनाने के लिए, शरीर को सुडौल, सुगठित और शक्तिशाली बनाये रखने के लिए स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का बराबर पालन करते रहना चाहिए। जिस प्रकार के स्वास्थ्य के लिए हम प्रयत्न करेंगे, उस प्रकार का स्वास्थ्य हमें अवश्य प्राप्त होगा। स्वस्थ जीवन की कामना करने के पहले उसके योग्य हमें बनना जरूरी है।

जब तक शरीर के भीतर से स्वास्थ्य को गिरानेवाले और नष्ट करनेवाले समस्त कारणों को दूर नहीं कर दिया जाता है, तब तक सच्चा आरोग्य प्राप्त करना असम्भव है।

मनुष्य भोजन पचाने की अपनी शक्ति की सीमा जब समझ जायगा, उस शक्ति की मर्यादा के भीतर जब तक नियमित भोजन करता रहेगा, तब तक उसका स्वास्थ्य ठीक रहेगा। अगर वह नियमित रूप से अधिक मात्रा में, उचित-अनुचित, समय-असमय

आदि का बिना विचार किये भोजन करता रहा, तो कोई
योजना उसको बीमारियों के चंगुल से छुटकारा नहीं दि
सकेगी।

काफी पीना, धूम्रपान करना, मदिरा-सेवन, विष-तुल्य
शरबतों का सेवन, काफी देर तक बेहद परिश्रम करना,
कमरों में सोना, आलस्यपूर्ण जीवन बिताना, अत्यधिक मात्रा
भोजन करना, अस्वाभाविक भोजन करना यह सब घातक बीमा
पैदा करनेवाली बातें हैं। इनसे एक बार उपवास के कारण
हुए रोग उभरकर फिर से शारीरिक कष्ट उत्पन्न कर देते हैं
अच्छा स्वास्थ्य निर्माण करने एवं उसे स्थायी बनाये रखने
केवल एक ही उपाय है, और वह यह कि जीवन की अच्छ
आदतें अपनायें।

बीमारियाँ क्यों और किन कारणों से उत्पन्न होती हैं
शरीर और मन की कोई भी या सभी आदतें, जो अधिक मा
में नाडी-तन्तुओं की शक्ति का उपयोग करती हैं, एक अंग
कई अंगों की नाडियों को दुर्बल बनाती हैं, वे ही बीमारियों
जन्म देती हैं। अगर हम एक न एक प्रकार से अपनी शक्ति
का अपव्यय करते रहेंगे, तो हम स्वयं को दुर्बल और शक्तिही
बना देंगे और दुर्बलता के कारण बहुत-सी बीमारियाँ पैदा हो
लगती हैं। ऐसी परिस्थितियों में शरीर के विकार, मल-मूत्र ए
अन्य दूषित पदार्थों का बाहर निकलना रुक जाता है और अधि
कूड़ा शरीर में जमा होने लगता है।

मनुष्य-जीवन को सेहतमंद बनाने के लिए केवल भोजन
सम्बन्धी रुचियों और आदतों में परिवर्तन से ही काम नहीं
चलता, बल्कि इसके लिए बहुत कुछ करना जरूरी है। वासनाएँ

भावनाएँ, विविध कर्म आदि कई बातों से हमारा जीवन जटिल बनता है और हमारे स्वास्थ्य से इन सबका गहरा संबंध है। हमें अपनी हरएक आदत को स्वास्थ्य के शाश्वत नियमों के अनुसार संयत और व्यवस्थित बनाना चाहिए।

उपवास से शरीर के तन्तुओं और रसों की एक बार सफाई हो जाती है, किन्तु पुनः अनियमित अत्यधिक भोजन करने लगते हैं, तो दूषित विकारों और तन्तुओं को बढ़ने से नहीं रोका जा सकता है। अतः हम जब तक उचित जीवन व्यतीत करेंगे, तभी तक सुन्दर, स्वस्थ जीवन का आनन्द भोग सकेंगे।

उपवास के बाद पुराने गलत भोजन के ढंग को बदलना चाहें तो क्या खाना चाहिए ? साधारण परिवारों का सामान्य भोजन कैसा रहेगा ?

आहार की चर्चा करते समय हमें एक बात ध्यान में रखनी है कि हम आज 'निःसत्त्व-आहार' के युग में जी रहे हैं। खाद्य पदार्थों को 'शुद्ध' बनाने के नाम पर साफ करते-करते उनके पोषक तत्त्वों को हम खतम कर देते हैं। सेंकने, तलने, पकाने और मिश्रण की क्रिया से खाद्य-पदार्थों के स्वाभाविक गुणों को शेष कर देते हैं। हमारे युग का यह सबसे भयंकर स्वास्थ्यनाशक खतरा है। जो व्यक्ति स्वाभाविक भोजन पर जीवित रहना चाहते हैं, उनके लिए यह एक सबसे बड़ी समस्या है।

प्रकृति के हाथों से जो पदार्थ प्राप्त होते हैं, जिन्हें हम युगों से पा रहे हैं, वे ही पदार्थ स्त्री और पुरुष, पशु-पक्षी सबके लिए योग्य हैं। उन पदार्थों पर रिफाइन करनेवालों की छाप नहीं पड़नी चाहिए। ये लोग गारण्टी के साथ अपने माल का विज्ञापन भी करते हैं कि प्राकृतिक पदार्थों के पौष्टिक गुणों को ज्यों का त्यों

रखा ही नहीं गया है, बल्कि रासायनिक क्रियाओं द्वारा अधि मात्रा में विटामिन-युक्त बनाया गया है। मानव-समाज में उन प्रचार व प्रसार के लिए उसके साथ चिकित्सकों तक के प्रमाण पत्र प्रस्तुत करते हैं। ये सब खाद्य-पदार्थ लम्बे उपवास के बा रोगियों के पथ्य के लिए हरगिज उपयुक्त नहीं हैं।

रोगियों के भोजन-सम्बन्धी अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि खेतों, बागानों एवं उद्यानों में जो खाद्य-पदा प्राप्त होते हैं, उनके गुणों की तुलना अन्य किसी पदार्थ से नहीं हो सकती। प्रोसेसिंग के द्वारा खाद्य-पदार्थों के सभी पोषक तत्त्व या तो निकल जाते हैं या गुण-हीन बन जाते हैं। इसलिए मैं प्रतिदिन ताजा और बिना उबाले हुए फल और सब्ज़ियों के आहार पर विशेष जोर देता हूँ। निश्चित रूप से हमारे प्रतिदि के भोजन में कम-से-कम ६० प्रतिशत ये ही पदार्थ होने चाहिए। इनसे हमारे शरीर की प्रतिदिन एमिनोएसिड की पूर्ति के लिए प्रोटीन की बहुत ही कम आवश्यकता पड़ेगी।

पकाने से भोजन का बहुत बड़ा पोषक गुण नष्ट हो जाता है। भोजन को पकाने के समय प्रायः अधिकांश पोषक भाग पानी बन जाता है। अधिक ऊँचे तापमान में भाप के साथ पोषक तत्त्व हवा में उड़ जाते हैं। रासायनिक प्रक्रियाओं के कारण उनका इस कदर परिवर्तन हो जाता है कि वे भोजन खाने के उपयुक्त नहीं रह पाते हैं।

भोजन के विषय में यह नियम ही बना लें कि प्रतिदिन एक समय के भोजन में बिना पकाया हुआ ताजा फल और कम-से-कम एक कच्ची तरकारी का सलाद होना आवश्यक है। वे विटामिन के स्रोत हैं। ये ही पदार्थ मनुष्य के शरीर में आवश्यक

पोषक तत्त्वों की पूर्ति कर सकते हैं। ऐसे पदार्थों का प्रतिदिन भोजन करने से टॉनिक और विटामिन की गोलियों की जरूरत नहीं पड़ती है।

खनिज और प्रोटीन शरीर के गठन और स्वास्थ्य-रक्षा के लिए बहुत ही आवश्यक हैं। इनसे रक्त, हड्डियों, दाँतों, मांस-पेशियों, ग्रन्थियों, जीव-नाडियों और ज्ञान-तन्तुओं का निर्माण और पोषण होता रहता है। ये तत्त्व प्रतिदिन खर्च होते रहते हैं और फिर बनते भी रहते हैं। ये तत्त्व बाजार में नहीं मिलते हैं, बल्कि वनस्पतियों से प्राप्त होते हैं। ये अंडों और हड्डियों में नहीं, प्राकृतिक सब्जियों में ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

बादाम, काजू, मूँगफली इत्यादि फलों में अच्छी प्रोटीन अधिक मात्रा में पायी जाती है। सबसे अच्छी किस्म की प्रोटीन हरी पत्तियों में मिलती है। केला, खजूर, अंजीर, फलों के गुदों, अन्न तथा सैकड़ों प्रकार के दूसरे फलों में भी काफी प्रोटीन पायी जाती है।

उपवास में शरीर के पूर्व-संचित पोषक तत्त्व जब समाप्त हो जाते हैं, तब हमें तीन प्रकार के भोजन की जरूरत होती है—प्रोटीन, खनिज और विटामिन। उपर्युक्त पदार्थों में ये तत्त्व पाये जाते हैं।

टीनों में बन्द भोजन, अधिक समय से संचित पुराना भोजन, 'प्रोसेस्ड' और 'रिफाइन्ड' भोजन, गंधक मिश्रित फल, सफेद आटा, सफेद चीनी, सफेद चावल—इनमें पोषक तत्त्व अल्प मात्रा में पाये जाने के कारण स्वस्थ तंतुओं का निर्माण होना इनसे असम्भव ही समझिये।

तेल और चर्बियों की अधिक आवश्यकता मनुष्य को नहीं होती है। फिर भी थोड़ा-बहुत जरूरी हो, तो हम वह भी फलों और सब्जियों से प्राप्त कर सकते हैं। सूर्यमुखी के बीज में, मटर की फली में, सोयाबीन, मूँगफली, जैतून आदि में प्रकृति ने स्वयं सुन्दर, स्वादिष्ट तेल अच्छी तरह भर दिया है। अतः हमें रिफाइन्ड तेल की जरूरत नहीं है। प्रकृति के पदार्थों में उपलब्ध तेल में खनिज और विटामिन भरपूर हैं। इसलिए वे बाजारू तेलों और चर्बियों से हर माने में श्रेष्ठ हैं।

शुगर एवं स्टार्च के लिए सीरप और रिफाइन्ड चीनी का उपयोग हानिकर है, क्योंकि इनमें खनिज और विटामिन नाम मात्र को भी नहीं पाये जाते हैं। मीठे फल, खजूर, अंजीर, मुनक्का, मीठा अंगूर, अधिक पका हुआ केला आदि फलों में काफी मात्रा में उच्च कोटि का शुगर और स्टार्च पाये जाते हैं।

आपको सर्वदा स्वस्थ और सेहतमंद रखने की सामर्थ्य केवल आपकी अच्छी आदतों में है, उपवास में नहीं।

१४. उपवास से कायाकल्प

वर्षों से हृदय-रोग से पीड़ित एक साठ वर्षीय महिला से मैंने तीन सप्ताह तक उपवास करवाया। उपवास-काल में वह पलंग पर लेटकर विश्राम करती थी। उपवास की समाप्ति पर उसने कहा था: "मेरा मन इतनी अधिक शान्ति और पूर्ण विश्राम का अनुभव कर रहा है, जितना मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ था।"

उपवास के प्रारम्भ में शरीर का जो भारी वजन और अत्यधिक रक्तचाप था, वह अन्त में काफी मात्रा में कम हो गया। वजन प्रायः १० कि० ग्रा० तक घट गया था। उपवास के कारण हृदय पर से बहुत बड़ा बोझ दूर हो गया था।

पहले के अनिद्रा-रोग की जगह उसके जीवन में सुखद और विश्रामदायिनी स्वाभाविक निद्रा का साम्राज्य छा गया था। हृदय की संचालन-क्रिया की तरह आँतों की भी काफी शुद्धि हुई थी। मुख-मण्डल की आभा, आँखों की ज्योति एवं शारीरिक गतिविधि से स्पष्ट होता था कि उसके शरीर का कायाकल्प हो गया था।

उपवास के अनुभवी जानते हैं कि उपवास के बाद बहुत-से व्यक्तियों में ताजगी और जवानी शरीर के रग-रग में व्याप्त हो जाती है। अंग-प्रत्यंग में नये जोश का भरना, सुप्त चेतनाओं का जगना, आलस और कमजोरी का दूर होना, अपूर्व बल और शक्ति का प्राप्त होना, मानसिक शक्ति का बढ़ना आदि जवानी के लक्षण नहीं, तो क्या हैं? शरीर के साथ-साथ मन की स्थिति भी

उपवास से उन्नत हो जाती है। बहरों की श्रवण-शक्ति लौट आती है। क्षीण नेत्र-ज्योति तेज व तीक्ष्ण बनती है। चेतना जगती है, घ्राण और स्वाद-शक्ति बिलकुल नैसर्गिक स्थिति में आ जाती है। लकवे से सुन्न हो चुके अंगों में नयी चेतना का संचार हो जाता है। पाचन-प्रणाली और आँतें सक्षम और प्रबल हो जाती हैं। शरीर की झुर्रियाँ बिलकुल स्वाभाविक रंग-रूप में बदल जाती है। त्वचा में कोमलता आती है, शरीर में नया रक्त संचार होता है, मुख की विकृतियाँ दूर होती हैं, अधिक रक्तचाप कम होता है, हृदय की गति में स्वास्थ्यकर सुधार होता है, बढ़ी हुई ग्रन्थियाँ स्वाभाविक रूप में बदल जाती हैं, यह सब लम्बे उपवास की देन है, जिन्हें अनेक अनुभवी उपवास-विशेषज्ञों ने प्रत्यक्ष देखा है।

उपवास के कारण वास्तव में हमारा पुनर्जन्म होता है। शरीर के अंग-प्रत्यंगों में नयी शक्ति का संचार होता है। जैसे-जैसे उपवास आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे शरीर के कोषाओं का सुधार होता है। उन कोषाओं से विजातीय द्रव्य (मेटाप्लासमिक मेटेरियल) निकल जाते हैं। विजातीय द्रव्यों के बाहर निकल जाने पर कोषाएँ सप्राण बन जाती हैं और अपना काम अधिक क्षमता के साथ करने लगती हैं।

हमारे शरीर के एकत्रित पदार्थों में कुछ तो अत्यधिक विषैले हैं। चर्बी के कोषाओं में और जोड़नेवाले स्नायुओं के कोषाओं में यह कूड़ा अधिक दिनों से जमा रहता है। इसीलिए इनका यथार्थ नाम 'शरीर का घूर' रखा गया है। हमारे स्नायुओं से उन पदार्थों को दूर करना बहुत जरूरी है। उनके दूर होते ही शरीररूपी यन्त्र अपना कार्य ठीक से करने लगता है। उपवास से शरीर

की सारी क्रियाएँ इतनी शक्तिशाली बन जाती हैं कि उपवास-समाप्ति के बहुत समय बाद तक, काफी सुचारु रूप से चलती रहती हैं।

सभी जीवित प्राणियों में कोषाओं की टूट-फूट और निर्माण, घिसना और मरम्मत बराबर एक साथ चलती रहती हैं। एक क्रिया से निर्माण होता है, तो दूसरी से विनाश। इन दोनों प्रक्रियाओं का नाम मेटाबोलिज्म (चयापचय) है। विनाश की प्रक्रियाएँ शरीर की सक्रिय अवस्था में अधिक जोरदार रहती हैं और निर्माण की प्रक्रियाएँ विश्राम और शान्ति की स्थिति में।

उपवास-काल में समस्त दोषों को दूर करनेवाली प्रक्रियाएँ तीव्र रहती हैं, परन्तु उपवास के अन्त में निर्माणकारी प्रक्रियाएँ प्रबल हो जाती हैं। शरीर की साधारण सफाई के पश्चात् निर्माण-कारी प्रक्रियाएँ बिना किसी बाधा-विघ्न के सृजनात्मक कार्य प्रारम्भ कर देती हैं।

जब कभी हम कहते हैं कि वह मनुष्य चालीस वर्ष में बूढ़ा बन गया और दूसरा सत्तर वर्षों में युवक बना हुआ है, तब हमारा अभिप्राय दोनों की जन्म-तिथि से उम्र बताना नहीं, बल्कि दोनों की कार्यक्षमता का निर्देश करना होता है।

उम्र से मनुष्य के शरीर और दिमाग का पता नहीं चल सकता है। शरीर की अवस्थाओं का उम्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। पानी की रगड़ से पत्थर घिस जाता है। समय के अनुसार पत्थर में परिवर्तन होता है। किन्तु पत्थर को घिसाने-वाला समय नहीं, पानी है। घिसावट की प्रक्रिया में समय लगता है, किन्तु समय घिसने की प्रक्रिया नहीं है। एक ही प्रकार के दो पत्थर एक ही पानी में घिसते जा रहे हैं, किन्तु उनकी

घिसावट की मात्रा में काफी अन्तर पाया जाता है, जो कि उनकी मजबूती पर निर्भर करता है। ठीक उसी तरह दो मनुष्य समान कारणों से प्रभावित हो रहे हैं, किन्तु उनके स्वास्थ्य में गिरावट भिन्न-भिन्न परिमाण में प्रकट होती है। यह अन्तर दोनों की शारीरिक बनावट और शक्ति पर निर्भर है।

हमारे शरीर में घिसे अंगों को नष्ट करके उनकी जगह नये अंगों का निर्माण करने की शक्ति है। वह शरीर की कोषाओं को पुनः नया बना सकती है। शरीर के अनावश्यक बोझ को हल्का बना देती है। हजारों दैहिक क्षतियों की पूर्ति कर देती है।

बुढ़ापे का अर्थ है, शरीर के भीतर वह परिवर्तन, जो समय के प्रवाह में उसकी मृत्यु के अवसर बढ़ाये यानी धीरे-धीरे शरीर के भीतरी अंगों और तन्तुओं में बीमारियों के बीज भर दे। वे शरीर के ढाँचे को नष्ट करते हैं। धीरे-धीरे उनका प्रभाव शरीर के अंगों को शिथिल बना देता है। साधारण रूप में वृद्धावस्था एक असाध्य बीमारी है। यही कारण है कि हम चाहे जिस उम्र में बूढ़े हो जाते हैं। इसीलिए कोई सत्तर वर्ष की आयु में पूरे जवान हैं, तो कोई चालीस वर्ष में पूरे वृद्ध।

बुढ़ापा समय में होता है, किन्तु समय के कारण नहीं होता। हमें वृद्ध बनानेवाले कारणों को पहचानना और समझना चाहिए और उन्हें दूर करना चाहिए।

इन परिवर्तनों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना कठिन है। प्रसिद्ध फ्रेंच वैज्ञानिक डॉ० एलोक्ति कारेल्ल अपने शोध के आधार पर बतलाते हैं कि भीतर कूड़ा जमा होने पर बुढ़ापा प्रकट होने लगता है। अगर इन कूड़ों को नियमित रूप से धोकर साफ कर दिया जाय, तो कोषाओं में विष का असर नहीं होता और

बुढ़ापा नहीं आता है। कोषाएँ अमर होती हैं। उनमें विभाजन और पुनर्विभाजन होता रहता है, किन्तु वे कभी मरती नहीं हैं। इस दृष्टिकोण से मृत्यु असम्भव है। लेकिन अमर होना सभी परिस्थितियों के अनुकूल होने पर निर्भर है, किन्तु सभी परिस्थितियाँ एक साथ अनुकूल कभी नहीं पायी जा सकती हैं।

कम उम्र में बुढ़ापे के आक्रमण से रक्षा की जा सकती है। उनके कारणों को दूर किया जा सकता है। बुढ़ापे को रोकने में काफी सफलता प्राप्त हो सकती है।

बुढ़ापे को रोकने के लिए संसार में आजकल अन्वेषण-कार्य बड़े जोरों से हो रहे हैं। बुढ़ापे को रोकना ही नहीं, बल्कि उसे जवानी में बदल देने का प्रयत्न हो रहा है।

शिकागो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सी० एम० चाइल्ड ने 'पशुओं में बुढ़ापा' विषय पर पन्द्रह वर्षों से अधिक समय तक अन्वेषण किया है। उनका निष्कर्ष है कि "पशुओं में जवानी को पुनः प्राप्त करने के लिए लम्बे उपवास अधिक लाभकारी हैं।"

फ्रेडरिक होलजेल और प्रोफेसर कार्लसन के कथनानुसार "उम्र बढ़ने के साथ-साथ पुनर्यौवन की वृद्धि में ह्रास होने लगता है। पैंतीस वर्ष की आयु के बाद युवावस्था की प्राप्ति की आशा कम हो जाती है।" मैं इन सिद्धान्तों में विश्वास नहीं करता हूँ। मेरा ख्याल है कि उन लोगों का परीक्षण सीमित क्षेत्र में किया गया है। मनुष्यों के जीवन में, पैंतीस वर्ष की आयु कुछ नहीं है। कोई कारण नहीं कि उस उम्र में शरीर के स्नायुओं के परिवर्तनों को सुधारा न जा सके।

मनुष्यों के भीतर पुनर्यौवन की प्राप्ति की भी एक सीमा होती है। मनुष्यों के शरीर में कोषाओं के परिवर्तनों को भी ठीक

नहीं किया जा सकता। उनको ठीक करना उतना ही असम्भव है, जितना कटे हुए पैर की जगह नये पैर को लगा देना। किन्तु जितना हम सोचते हैं, उससे अधिक मात्रा में मनुष्यों के भीतर जवानी का संचार करना सम्भव है।

किन्तु लम्बे उपवासों में बहुत महत्त्वपूर्ण कायाकल्प के उदाहरणों को मैंने स्वयं देखा है, जिसमें साठ वर्षों से अधिक उम्रवाली स्त्रियों व पुरुषों में अधिक मात्रा में पूरे यौवन के लक्षण प्रकट हुए हैं।

यद्यपि काफी वृद्ध स्त्रियों-पुरुषों में पूर्ण यौवन की अत्यधिक सम्भावनाएँ नहीं रहती हैं, तथापि असमय में प्राप्त बुढ़ापे को रोकना बहुत सम्भव और सरल है। यदि हम उपवास के प्रयोग से आवश्यक अंगों के ह्रास को रोक दें, शरीर के हानिकर कूड़े को बाहर कर दें और जीवित अंगों को पूर्ण विश्राम दें तो निस्सन्देह हम बुढ़ापे को रोक सकते हैं।

१९. वजन बढ़ाने के लिए उपवास

अक्सर लोग उपवास का प्रयोग शरीर का वजन घटाने के लिए किया करते हैं। इसीलिए इन्हें यह समझना कठिन होगा कि उपवास से शरीर का वजन बढ़ाया भी जा सकता है।

अधिक और असमय में भोजन करने से शरीर का वजन घटता है। प्रतिदिन ऐसे कमजोर व्यक्तियों से मुलाकात होती है, जो कहते हैं कि "जितना खाता हूँ, उतना ही वजन घटता है।" वे लोग वजन बढ़ानेवाले खाद्य-पदार्थों का भक्षण करते जाते हैं। एक के बाद एक आहार बदलते जाते हैं। परिणाम यह होता है कि वे लोग दुर्बल और कमजोर बने रहते हैं और दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक दुबले-पतले होते जाते हैं। क्योंकि उनकी पाचन-शक्ति अतिरिक्त आहार के कारण स्वयं शिथिल और निष्क्रिय बन जाती है।

भोजन और पोषक तत्त्व एक ही नहीं हैं। हम जितना खाते हैं, उतना पोषक तत्त्व नहीं पाते हैं, बल्कि उतना ही पाते हैं, जितना सुगमता से पचा सकते हैं। जब संचय और पाचन-प्रणाली दुर्बल और शक्तिहीन हो जाती है, तब शरीर में वजन की वृद्धि रुक जाती है। शरीर का दुर्बल होना भोजन में पोषक तत्त्वों का अभाव नहीं, बल्कि हमारे पाचन-यंत्रों का शिथिल और मन्द होना है। ऐसे रोगियों के लिए भोजन की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उनके पाचन और संचय-यन्त्रों को ठीक करने

की है। अगर ये यन्त्र ठीक कर दिये जायँ, तो उनका वज़ बढ़ाने में कोई कठिनाई नहीं आ सकती है।

अनुभव और परीक्षण दोनों से सिद्ध हो चुका है कि उपवास में निर्माणकारी शक्तियाँ बढ़ती हैं। संचय और पाचन-शं सुधरता है। अतः कम वजनवाले व्यक्तियों को अधिक वज़ उपवास से प्राप्त होते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। वास्तव में उपवास-काल में उनका वजन जरूर कम हो जाता है किन्तु उपवास के अन्त में उनका वजन घटने की मात्रा से बहु अधिक परिमाण में बढ़ भी जाता है। क्योंकि उपवास के कार उनके शरीररूपी यंत्र अधिक सक्षम बन जाते हैं और सुचा रूप से कार्य करने लगते हैं। यही कारण है कि दुर्बल व्यक्ति जो उपवास के पहले अधिक भोजन के बावजूद दुबले-पतले बने रहते हैं, वे ही उपवास के बाद अल्प भोजन पर वजन में काफी वृद्धि कर लेते हैं।

ओसवार्न, मेनडेल और थामसन ये तीनों आहार-शा और बायोकेमिस्ट्री के प्रकाण्ड विशेषज्ञ हैं। उनका मत है कि स्वल्प आहार से शारीरिक विकास द्रुत गति से होता है। उपवास में शरीर को विश्राम मिलने के कारण पाचन और संचय-यन्त्र स्वस्थ हो जाते हैं। खाद्य-पदार्थों का भी अच्छा और अधिक किफायत से व्यय होता है। उपवास के बाद अधिक नाइट्रोजन की भूख रहती है और उसे ग्रहण करने की शक्ति भी अधिक बढ़ जाती है, जिसके कारण बढ़िया प्रकार के स्नायुओं की उत्पत्ति होती है, जो खाली स्टार्च, शुगर, फैट से नहीं बनाये जा सकते हैं।

हजारों उदाहरण भरे हैं कि उपवास से मेटाबोलिज्म (चयापचय) की क्रियाएँ संचालित होती हैं, जिसका अर्थ है शरीर में पोषक तत्त्वों की अधिक मात्रा में उत्पत्ति।

शरीर के वजन की कमी का कारण-पाचन और संचय-प्रणाली की कमजोरी है। अतः अस्वस्थ अंगों को स्वस्थ बनाकर ही उनकी शारीरिक दुर्बलता दूर की जा सकती है। सचमुच दुर्बल व्यक्तियों को अधिक भोजन नहीं, बल्कि उसे पचाने की अधिक शक्ति चाहिए।

कम वजनी व्यक्तियों के लिए कितना लम्बा उपवास उचित है, इसका कोई एक निश्चित उत्तर नहीं है। रोगियों की शारीरिक अवस्थाएँ अलग-अलग हैं। अतः उनके उपवास करने की अवधि भी अलग-अलग रहती है। कभी दस दिनों से लेकर दो सप्ताह का उपवास पर्याप्त होता है। कभी-कभी इससे भी लम्बे उपवास अनिवार्य होते हैं। यहाँ भी उपवास योग्य निरीक्षण और निर्देशन में होना चाहिए। पाचन-प्रणाली और संचय-क्रियाओं में सुधार करना जरूरी है। स्नायु-मण्डल में शक्ति पहुँचाने के लिए विश्राम करना भी आवश्यक है। ●

१६. बच्चों का उपवास

क्या बच्चे उपवास कर सकते हैं ? कब और कितना लम्बा उपवास कर सकते हैं ? इसका उत्तर यही है कि बच्चों को पर्याप्त ज्ञान प्रकृति से ही प्राप्त है और वे जानते हैं कि उन्हें कब और कितना लम्बा उपवास करना उचित है।

एक माँ शिकायत करती आयी कि "मेरा लड़का भोजन नहीं कर रहा है। मुझे इसके लिए बहुत कोशिश करनी पड़ती है। जब तक मैं दबाव नहीं डालती हूँ, वह भोजन को छूता भी नहीं है।"

मैंने सुझाव दिया कि "उसे उसकी मर्जी पर छोड़ दो, जब तक उसे स्वाभाविक भूख न जगे।"

"उसे कभी भूख नहीं लगती और ऐसा प्रतीत होता है कि वह बिना भोजन के दम तोड़ देगा।"

बहुत-सी माताओं के सामने बच्चों की यही समस्या होती है। वे न मालूम कितनी-कितनी बातें किया करती हैं, गपशप में समय नष्ट करती रहती हैं; किन्तु बच्चों के भोजन की ओर उचित ध्यान नहीं रखती हैं। भूख न लगने की, पोषक तत्त्वों के अभाव की, वजन के घट जाने की अक्सर शिकायतें आती हैं; किन्तु ऐसी शिकायत नहीं पहुँचती है कि बच्चा अधिक भोजन के कारण कष्ट भोग रहा है। अपने चालीस वर्षों के अनुभव में मैंने कभी किसी भी बच्चे को भूख से मरते नहीं देखा, जब स्वेच्छा से उसने भोजन बन्द कर दिया है। सैकड़ों बच्चों

बिना भोजन के रहते देखा है, जब तक उनकी स्वाभाविक भूख लौट आयी है। ऐसा बच्चा भी देखने में कभी नहीं आया, जो शीघ्र ही भोजन करने की इच्छा व्यक्त करे।

मैंने उस बच्चे को उपवास करने दिया। उसे इच्छा के विपरीत अधिक खाने के लिए बाध्य नहीं किया। तब कुछ ही दिनों में उसने भोजन करने की स्वाभाविक इच्छा प्रकट कर दी।

कुछ दिनों के पश्चात् माँ भी प्रसन्न दिखी और बच्चे को भी स्वस्थ एवं शान्त देखा। माँ ने बताया कि "अब भोजन पर सबसे पहले लड़का उपस्थित होता है और उसे हम लोग भोजन करने के लिए वाध्य नहीं करते हैं।"

जब छोटे बच्चे भोजन की इच्छा व्यक्त न करें, तब उन्हें छोड़ दें। यह निश्चित है कि वे उचित समय पर भूख की इच्छा प्रकट करेंगे ही। उनके भीतर भूख जगाने के लिए भोजन बन्द करना सुरक्षित और सर्वोत्तम साधन है। धमकियों से तो उनमें प्रतिरोध की भावना उत्पन्न होती है। स्वादिष्ट और मीठे भोजन की लालच दिखाकर उनके भीतर भूख जगाने की चेष्टा की अपेक्षा यह मार्ग उत्तम है। विटामिन और टॉनिक से भी बढ़िया यह उपाय है।

बच्चों को बिना खाये रहने की छूट दें। जब स्वाभाविक भूख जगेगी, तब साधारण भोजन से उनकी क्षुधा मिट जायगी। उन्हें स्वादिष्ट भोजनों की जरूरत नहीं रहेगी। दूध-मिश्रित चाकलेट, आइसक्रीम एवं मिठाइयाँ सादा पोषक आहार की तुलना में तुच्छ हैं। अतः बच्चों को बिना उनकी इच्छा के भोजन करने के लिए क्यों बाध्य किया जाय?

बच्चों को भोजन के लिए बाध्य करना, तरह-तरह के प्रलो-भन देकर अनुचित पदार्थों को खिलाने से उनकी स्वाभाविक भूख

की इच्छा नष्ट हो जाती है। पैसा देना, खिलौना देना, सिनेमा दिखलाना आदि उनके चरित्र और स्वभाव को बिगाड़ना है। इन्हीं सब कारणों से उनका भोजन की अधिकता से पीड़ित होना स्वाभाविक है।

अतिरिक्त भोजन करने के कारण कुछ समय के लिए उनकी भूख कम हो जाती है। भोजन के निर्धारित समय के भीतर अतिरिक्त मिठाइयाँ और चाट बच्चों को खिलाने से भूख मिट जाती है। इसीलिए अगर बच्चे भोजन के समय खाने की इच्छा व्यक्त न करें, तो उनकी माताओं को आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए। अनुचित आहार खिलाने से भी प्रायः बच्चों में मन्दाग्नि की शिकायत आ जाती है। तभी 'मैककैरीसन' कहते हैं कि "भूख का नष्ट होना प्रकट करता है कि शरीर में विटामिन का अभाव है। आनेवाले खतरों की यह पहली सूचना है। यह संरक्षण का लक्षण है।"

थोड़े समय तक भोजन न करने के कारण जब भोजन की मात्रा घट जाती है, तब शरीर को विटामिन की आवश्यकता भी कम हो जाती है। इसलिए बच्चों को अधिक परिमाण में ताजे फल और सब्जियाँ देनी चाहिए। अनाज, रोटी, आलू, चावल, मटर और मिठाई बहुत कम देनी चाहिए। अगर बच्चों को स्वाभाविक रूप से विटामिन प्राप्त होता रहे, तो उनकी माताओं को अन्य प्रकार के कृत्रिम विटामिनों के लिए चिन्तित नहीं रहना पड़ेगा।

मैककेरीसन का कथन है कि "फल और सब्जियों से बढ़कर और कोई उत्तम भोजन नहीं है, क्योंकि उनके भीतर सभी किस्म के ज्ञात और अज्ञात विटामिन पाये जाते हैं।"

बच्चों को सफेद चीनी, रंग, गंध, ग्लू से बनी कैन्डी क्यों खिलाती हैं, जब कि खजूर, अंजीर, केला एवं अन्य फल अधिक स्वास्थ्यवर्धक और मधुर पदार्थ सुलभ हैं। इन फलों व सब्जियों में औषधियों की अपेक्षा अधिक विटामिन पायी जाती है। एक सन्तरा या अन्य कोई फल बच्चों को काफी पोषक तत्त्व प्रदान कर सकता है। आइसक्रीम से भरी तश्तरी बच्चों को स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। बोतलों में बन्द रस उनके लिए विष के रूप में है। अतः बच्चों को खिलाने में जितनी अधिक सावधानी बरती जायगी, उतनी ही अधिक उन्हें अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति होगी और माँ-बाप व्यर्थ की चिन्ता और खर्चों से बच जायेंगे। बच्चों की बीमारियाँ माँ-बाप की गलतियों के कारण पैदा होती हैं।

बच्चे जब कभी बीमार पड़ते हैं, तो उन्हें खाने की कोई इच्छा नहीं रहती है। उनके शरीर की अवस्था के अनुसार नियत काल तक उन्हें भोजन नहीं देना चाहिए।

अस्वाभाविक रूप से उत्तेजना उत्पन्न होने पर उनके स्नायु-मण्डल पर काफी जोर पड़ता है और बच्चों को बदहजमी की शिकायत हो जाती है। उनके शरीर में जलन, बेचैनी, घबराहट, अनिद्रा, दुर्गन्धपूर्ण श्वास, दर्द, मुख पर सफेदी, बुखार, गैस्ट्रिक दर्द, जी मचलना, वमन आदि के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। ऐसी अवस्थाओं में उन्हें भोजन न देना ही उचित है। यदि बदहजमी की हालत में उन्हें भोजन दिया गया तो उनकी आँतों व उदर में दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। यहीं से भविष्य में खतरनाक बीमारियों के पैदा होने की सम्भावना रहती है।

यदि शीघ्र ही भोजन बन्द कर दें, तो जल्दी ही बदहजमी खत्म हो जाती है। बच्चों की बेचैनी और घबराहट मिट जाती है।

छोटे बच्चों को बुखार आता है, तो उससे एक सप्ताह या अधिक पहले से आँतों के भीतर सडाँध या दुर्गन्ध होने लगती है। प्रायः अधिक खिलाने के कारण उन्हें दूध ठीक से हजम नहीं होता है। बच्चों को दूध की दस्त होने लगती है। इसी समय यदि उनके भोजन का ठीक से खयाल रखा जाय, तो उन्हें अच्छा होने में देर नहीं लगती है। किन्तु लापरवाही के कारण आगे चलकर उनके पेट में जलन और सूजन होने लगती है। बड़ी आँत और छोटी आँत में भी वही दशा और जलन उत्पन्न हो जाती है।

अगर उदर-प्रदेश में बदहजमी कई दिनों तक रही, तो बच्चा बेचैनी, जलन और बुखार से आक्रान्त हो जायगा। पहले भोजन-पदार्थों की उलटी होती है। फिर बार-बार पानी और पित्त की हलके पीले रंग की उलटी होती है। ऐसी स्थिति में यदि भोजन बन्द कर दें और थोड़ा-थोड़ा पानी पीने को दें, तो एक दिन से लेकर चार दिनों के भीतर बच्चा नीरोगी हो जाता है। बच्चों को अधिक प्यास लगती रहती है। अतः पीने का साधारण गरम पानी जरूर पिलायें, कभी भी भोजन न खिलायें।

अतः बीमारी के समय बच्चों को स्वाभाविक विश्राम और शान्ति दें। भोजन तभी खिलायें, जब वे स्वाभाविक भूख व्यक्त करें। उतना ही दें, जितना वे चाहते हैं। सर्वदा बच्चों का लालन-पालन स्वास्थ्य के नियमों के अनुसार होना चाहिए।

१७. तीव्र रोगों में उपवास

"मेरी बच्ची मर रही है"—माँ ने टेलीफोन से प्राकृतिक चिकित्सक को सूचित किया।

"आपको कैसे ज्ञात हुआ कि बच्ची मर रही है?"

बच्ची की माँ ने हतोत्साहित होकर कहा : "उसे न्यूमोनिया हो गया है। पाँच मशहूर चिकित्सकों ने आपस में परामर्श किया। उन्होंने निर्णय दिया कि मेरी बच्ची मर जायगी। विज्ञान इस सम्बन्ध में कुछ भी करने में असमर्थ है।"

"चलिए, हम उन्हें गलत सिद्ध कर दें और बच्ची की जीवन-रक्षा का प्रयत्न करें।"—चिकित्सक ने कहा।

फोन से ही चिकित्सक ने सलाह दी :

"१. बच्ची के बिस्तर के पास से औषधियों की शीशियाँ और बोतलों को बाहर दूर फेंक दें।

२. खिड़कियों को खोलकर ताजा हवा कमरे के भीतर प्रवेश करने दें।

३. बच्ची को गरम रखें, किन्तु ताजा हवा को न रोकें।

४. बच्ची को उसकी इच्छा के अनुसार पीने को पानी दें, किन्तु कोई भोजन और औषधि न दें।"

बीस वर्षों बाद वही बच्ची एक स्वस्थ और सुन्दर नारी के रूप में देखने में आयी, जब कि उसका और उसके पति के विवाह के समय का चित्र अपने प्राण-रक्षक प्राकृतिक चिकित्सक को भेंट स्वरूप में प्रदान किया गया।

यह कोई असाधारण उदाहरण नहीं है, बल्कि ऐसे हजारों रोगियों को बचाया गया है, जिन्हें डॉक्टरों ने असाध्य कहकर जवाब दे दिया था। उनको बचाने के लिए वे लोग जिन औषधियों का प्रयोग करते हैं, अक्सर वे ही दवाइयाँ उनकी मृत्यु का कारण होती हैं। न्यूमोनिया की बीमारी में कफ दबाने के लिए औषधियाँ दी जाती हैं और सीने के दर्द को रोकने के लिए शूलनाशक लेप करते हैं, किन्तु रोग घटता नहीं है। यहाँ तक कि रोगियों को उन्हीं औषधियों के कारण प्रायः मौत के घाट उतरना पड़ता है। न्यूमोनिया में भोजन खिलाने से अधिक खतरा उत्पन्न हो जाता है। जब कभी न्यूमोनिया और पार्श्वशूल दोनों बीमारियों में रोगी को भोजन दिया जाता है, तब शरीर के विषैले पदार्थ अधिक मात्रा में सूख जाते हैं। भोजन खिलाते रहने से पृथक्करण की क्रिया रुक जाती है, फेफड़े और फुप्फुस में सूजन आ जाती है और कारण-स्वरूप उनका आवरण अपनी स्वाभाविक अवस्था में परिवर्तित नहीं हो पाता है। उनकी सूजन भी जल्दी अच्छी नहीं होती है। परिणाम यह निकलता है कि उनमें मवाद भर जाने से घाव हो जाता है।

ज्वर व जलन आदि तीव्र रोगों में भूख खतम हो जाती है। शरीर के भीतर पाचन-प्रणाली की दीवारों से अत्यधिक मात्रा में इन्द्रियों के मल, कफ आदि बाहर निकलते रहते हैं। गैसट्राइटिस व टाइफायड जैसे रोगों में सर्दी के कारण नाक और गले से मल निकलते हैं और पाचन-प्रणाली की स्वाभाविक स्नायु-सम्बन्धी क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं। भोजन हजम करने की शक्ति खतम हो जाती है। जलन, दर्द और बुखार के कारण मल-मूत्र बाहर करने की प्रणाली और उदर-सम्बन्धी संचालन क्रिया मन्द और गतिहीन हो जाती है।

ऐसे रोगियों को भोजन देने से उनके दर्द और यातनाओं में वृद्धि ही होती है। उनके शरीर का तापमान बढ़ जाता है। पाचन-यंत्र बिगड़ जाता है और हाथ-पैर एक स्थान से दूसरे स्थान तक चलने-फिरने में असमर्थ हो जाते हैं और उनके अच्छे होने की उम्मीद कम हो जाती है। दोनों को विश्राम की जरूरत होती है। भोजन से क्या लाभ है, यदि मनुष्य उसे पचा न सके? स्वाभाविक इच्छा न होते हुए भी भोजन करने से बेचैनी, तकलीफ और वमन ही होते हैं। जबरदस्ती भोजन खिलाने से रोगियों की उन्नति नहीं, बल्कि क्षय होता है। इसलिए उपवास ही उचित है।

बीमार मनुष्य को किसी भी वस्तु में स्वाद नहीं मिलता है। थोड़ा भी शोरगुल बुरा लगता है। उसका दिमाग चक्कर खाता रहता है।

नयी बीमारी का प्रथम लक्षण है भूख की अनिच्छा। चेचक, टाइफायड, ज्वर, टाईफस ज्वर, न्यूमोनिया, डिफ्थीरिया, शीतला, हैजा आदि में सबसे पहले भूख ही मिट जाती है। प्रकृति बुद्धिमानी से खाने की सभी इच्छाओं को जब नष्ट कर देती है, तब हमें भोजन करने की कोई जरूरत ही नहीं रहती। ऐसी विपत्तियों से बचने का एकमात्र उपाय उपवास है।

उपवास थोड़े समय के लिए एक उत्तम उपाय या साधन है, जिसके जरिये शरीर अपने विशेष जरूरी कार्य कर लेता है। उप-वास के कारण जीवित अंग-प्रत्यंग जीवन के बड़े-बड़े खतरों का सामना करते हुए जीवन बचाने में समर्थ होते हैं। प्रायः यह बात सही है कि उपवास और चिकित्सा दोनों का बीमारियों को दूर करने में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उपवास प्रकृति का दिया एक

स्वाभाविक साधन है, जो बीमार और स्वस्थ दोनों अवस्थाओं में अधिक उपयोगी है। किन्तु उपवास और स्वास्थ्य-रक्षा के अन्य उपायों का समन्वय शरीर के यंत्रों को स्वस्थ और सबल बनाता है।

उपवास उपचार न होते हुए भी उपचार-प्रक्रिया का एक आवश्यक और अभिन्न अंग है। जब पाचन-प्रणाली रुक जाती है, भोजन की इच्छा मिट जाती है, तब यह उत्तम साधन रोग-निवारक प्रक्रिया और आरोग्यकारी प्रक्रिया की तरह उपचार-प्रक्रिया का एक भाग है, जो बीमार व्यक्ति को बिस्तर पर विश्राम करने के लिए बाध्य कर देता है।

बीमारियों के निवारण में आजकल की सर्जरी विद्या भी अधिकांश भागों में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो रही है। इसका प्रयोग व्यावसायिक दृष्टिकोण से बढ़ रहा है, किन्तु मानवीय दृष्टिकोण से इसका पतन हो रहा है। इसके कुछ ही कुशल और उचित प्रयोगों को उपचार का साधन माना जा सकता है, बाकी व्यर्थ और अनावश्यक हैं। मैं ही नहीं, बड़े-बड़े प्रसिद्ध सर्जनों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। वह दिन दूर नहीं, जब उपवास की प्रक्रियाओं से सर्जरी की बहुत-सी आवश्यकताएँ पूरी हो जायेंगी।

उपवास केवल रोगियों के लिए है, ऐसा सोचना उचित नहीं है। साधारण शारीरिक अव्यवस्था में छोटा उपवास करना भी लाभप्रद है। खतरनाक रोगों को उपवास से प्रारम्भ में ही नष्ट कर सकते हैं और उनकी जड़ों को शरीर के भीतर जमने नहीं दे सकते हैं। सिर-दर्द, उदर-पीड़ा, साधारण कमजोरी में कुछ

दिनों का उपवास लाभदायक होता है, क्योंकि शरीर के दूषित पदार्थ बाहर हो जाते हैं। कोई बड़ी बीमारी भविष्य में नहीं हो पाती है।

फिर भी समझ लेना चाहिए कि उपवास कोई उपचार नहीं है। उपवास से शरीर को विश्राम मिलता है, अंगों को बल मिलता है, जिससे आरोग्यकारी प्राकृतिक शक्तियाँ रोगों का निवारण शीघ्रता से करती हैं। ●

१८. पुरानी व्याधियों में उपवास

"मुझे भूख नहीं लगती है।" "मुझे भोजन में स्वाद न आता। मैं केवल कर्तव्य समझकर भोजन करता हूँ।" "भोजन के बाद मुझे काफी कष्ट होता है।" पुरानी व्याधियों से ग्रस्त रोगियों से तरह-तरह की ऐसी हजारों शिकायतें प्रायः सुनने को मिलती हैं। पुराने (क्रॉनिक) रोगों में दमा, कोरलाइटिस, गैसट्राइटिस, सूखा ज्वर, गठिया, जोड़ों की सूजन, नाड़ियों की कमजोरी, उदर के नासूर और कैंसर आदि प्रमुख कहे जाते हैं।

वे लोग आवश्यक कर्तव्य समझकर तीनों समय प्रतिदिन नियमित रूप से भोजन करते हैं। वे सोचते हैं कि उन्हें जीवित रहने के लिए भोजन करना आवश्यक है। उनमें कुछ अत्यधिक वजनवाले व्यक्ति हैं और कुछ लोग काफी दुबले-पतले हैं। अक्सर उन्हें अधिक भोजन करने की आदत होती है।

पुराने रोगों से पीड़ित एक दूसरा वर्ग भी है, जो हमेशा भूखा रहता है। दिन-रात हर समय कुछ-न-कुछ वे खाते रहते हैं। स्वभावतः वे अधिक खाते हैं। मसालेदार एवं जायकेदार भोजन में उनकी काफी रुचि रहती है। अक्सर उन्हें हर भोजन के बाद तकलीफ होती है, फिर भी वे भोजन में कमी नहीं करते हैं। इसी वर्ग में वे लोग भी सम्मिलित हैं, जिन्हें भोजन करने या न करने पर भी समान पीड़ा होती है।

वास्तव में यहाँ भी उन्हें कुदरती भूख नहीं, बल्कि कृत्रिम भूख ही अधिक सताती है। वे लोग लालच, लालसा और सामान्य जलन की भावना को भूल से भूख समझते हैं। पेट में मरोड़, उदर-पीड़ा और गैस्ट्रिक पीड़ा को भी भूख की पीड़ा मान लेते हैं। इसी कारण से भूख की हाजत को सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। यद्यपि भोजन से उन्हें क्षणिक तृप्ति प्राप्त होती है, तो भी इससे सिद्ध नहीं होता है कि उन्हें भोजन की स्वाभाविक आवश्यकता है। 'कॉफी' के आदी लोगों को एक कप कॉफी पिलाने से क्षणभर के लिए उनका सिर-दर्द कम हो जाता है। इस प्रकार भूख से सदा पीड़ित रहनेवालों की झूठी भूख पर विजय प्राप्त करने के लिए उपवास का मार्ग सबसे सरल और उत्तम है।

अधिक मानसिक पीड़ा के समय मनुष्य भोजन नहीं करना चाहता है। पागल लोग प्रायः भोजन नहीं करते हैं। यद्यपि आदत के अनुसार जबरदस्ती उन्हें भोजन खिलाया जाता है, तो भी मुझे सन्देह है कि इस प्रकार से उन्हें भोजन देना उचित है या नहीं। कुछ अवस्थाओं में मनुष्य भी पशुओं की भाँति सहज ही भोजन का त्याग कर देता है। पागलों का भोजन न करना बिलकुल स्वाभाविक है। यदि उन्हें भोजन न दिया जाय तो वे विशेष लाभान्वित होंगे।

उपवास की सफलता ऐसी बीमारियों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। वर्षों के रोगों के लक्षण कभी-कभी उपवास के कारण बिलकुल नाटकीय ढंग से लुप्त हो जाते हैं। शरीर के दूषित पदार्थ जैसे मल-मूत्र, कूड़ा, नष्ट तन्तु, कफ, पित्त, पसीना आदि जो कई वर्षों में एकत्र होकर जीवन को विषाक्त बना

देते हैं, जिनके कारण मनुष्यों का जीवन नरक के सदृश दुःख बन जाता है, उपवास में उनकी सफाई जितनी जल्दी और आसानी से हो सकती है, उतनी भोजन करने की अवस्था में कभी नहीं हो सकती। उपवास के कारण शरीर के अंगों को पूर्ण विश्राम और बल प्राप्त होता है, जिससे शरीररूपी मन्दिर की पूर्ण स्वच्छता अधिक शीघ्र और विस्तृत रूप में सफलतापूर्वक हो जाती है। उचित उपवास से शरीर का मल बाहर निकल जाता है—यही रोगों की जड़ है—इससे शरीर काफी हलका हो जाता है। आगे जीवन के उचित तरीकों को अपनाने से स्वास्थ्य काफी अच्छा और शक्तिशाली हो जाता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम तब तक भोजन जारी रखें, जब तक कि हमारा शरीर भोजन के खिलाफ जोरदार बगावत शुरू न कर दे। जब कभी स्वास्थ्य में सामान्य गड़बड़ी, थकावट के लक्षण, आलस्य और सुस्ती का अनुभव हो तो समझदार मनुष्यों को रोग-निरोधक उपवास करना चाहिए। इस तरह का उपवास लम्बा नहीं होता है। शरीर में शीघ्रता से सुधार के लक्षण प्रकट होते हैं। भयंकर व्याधियों का विकास रुक जाता है। अक्सर बड़ी तेजी से स्वास्थ्य में सुधार भी होता है। उपवास में जब आँखें तेज हों, त्वचा सुन्दर हो जाय, श्वास मधुर हो, रोगों के लक्षण शेष हो जायँ और शरीर में ताकत मालूम हो, तब हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि उपवास ने हमारे शरीर को रोग-निवारक सफाई-अभियान के उपयुक्त बना दिया है।

एक साधारण या एक लम्बे उपवास से शरीर की सारी गन्दगी दूर हो जाती है, ऐसा सोचना ठीक नहीं। जिन्दगीभर

गन्दगी को दूर करना और अस्तव्यस्त अंगों को ठीक करना दो-एक सप्ताह के उपवास से सम्भव नहीं है। लकवा, जोड़ों की सूजन और बड़ी गाँठ आदि में काफी समय की जरूरत रहती है। इन बीमारियों में पूरा स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए अक्सर तीन या अधिक उपवासों की आवश्यकता होती है।

नाक की नली की भीतरी सूजन और जलन का नाम नाक का नासूर है। इसमें सर्दी-जुकाम एवं कफ-संबंधी पीड़ा बराबर हुआ करती है। पहले इसे पुश्तैनी बीमारी कहते थे। किन्तु आजकल ऐसा नहीं सोचा जाता है। नासूर चाहे नया हो या पुराना हो, किन्तु इसका प्रभाव शरीर के मुख्य अंगों पर पड़ता है। जलन होने लगती है। स्थान-स्थान पर इस (काटार) जलन का अलग-अलग नाम है, किन्तु यह एक ही बीमारी है और इसका एक ही कारण भी है। किन्तु इसके अलग-अलग नाम होने के कारण चिकित्सक और रोगी दोनों भ्रम में पड़ जाते हैं। वे एक ही बीमारी को भूल से बहुत-सी बीमारियाँ समझ लेते हैं।

इस प्रकार के रोगी असह्य पीड़ा के मारे काफी दुर्बल और चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते हैं। किन्तु जब ये लोग उपवास की शरण लेते हैं और नियमपूर्वक लम्बे उपवास भी करते हैं, तब उनके अंगों में अभूतपूर्व शक्ति उत्पन्न होती है, जो रोगों से संघर्ष करके उन्हें रोगों से छुटकारा दिला देती है। यही नहीं, अन्य छूत की बीमारियों में भी, जिन पर सर्जरी का जादू विफल हो गया था, उन्हें भी उपवास से समूल नष्ट कर दिया जाता है।

बहुत ही कम बीमारियों में दो उपवास जरूरी होते हैं। सूखा ज्वर और दमा में कभी-कभी दो लम्बे उपवास करने पड़ते हैं।

केवल दो सप्ताह के पानी के उपवास में एनीमिया के रोगी शरीर में काफी मात्रा में रक्त के असंख्य जीवाणुओं की वृ हो जाती है। शरीर की गन्दगी के कारण रक्त-संचार में क पड़ जाती है, किन्तु उपवास में सफाई के कारण सभी दोष दूर जाते हैं और रक्त बनानेवाले अंग फिर सुचारु रूप से कार्य कर प्रारम्भ कर देते हैं।

कभी-कभी कैन्सर से भी एनीमिया की उत्पत्ति हो जाती है फिर भी बगैर कुशल उपवास-चिकित्सक के परामर्श के रक्ताल्प में उपवास नहीं करना चाहिए।

डायबेटिस (बहुमूत्र) के रोगियों को भी उपवास करने लिए कुशल अनुभवी उपवास-चिकित्सक की आवश्यकता रह है। अगर इन रोगियों के शरीर का वजन अधिक हो, तो निर्भय होकर उपवास कर सकते हैं और लाभ उठा सकते हैं लेकिन अगर वे काफी दिनों से इनसुलिन का व्यवहार कर र हों तो उन्हें उपवास नहीं करना चाहिए।

'स्क्लेरोसिस' स्नायुओं के रोग का नाम है। इसमें स्ना तथा कोषाएँ कड़ी पड़ जाती हैं। उनमें सूजन और जलन हो है। इस रोग के प्रत्येक रोगी के लक्षण अलग-अलग होते हैं सामान्यतया इस रोग में शरीर कमजोर होता है, अंग-संचाल में भारी पीड़ा होती है, पागलपन और मतिभ्रम होता है, जब लड़खड़ाने लगती है, हाथ-पैर काँपने लगते हैं, आँख पर भी अ होता है।

यह रोग व्यापक रूप से सारे शरीर के स्नायुओं में फैलता है, तो उसे 'मल्टीपल स्क्लेरोसिस' कहते हैं।

इस रोग की उत्पत्ति का कारण अभी तक अज्ञात है और इसीलिए सफल उपचार भी असंभव हो रहा है।

अनुभव से सिद्ध हुआ है कि उपवास से स्नायुओं की यह जकड़न भी दूर होती है, अंग-संचालन सहज हो जाता है। उपवास के बाद भी पूर्ण विश्रांति देने से रोग काबू में आ जाता है।

यह रोग बहुत पुराना हो जाय, तब तो इसका उपचार असम्भव है।

१९. सर्दी, जुकाम, इन्फ्ल्यूएंजा आदि सामान्य बीमारियों में उपवास

संसार में साधारण ठंड के कीड़ों का आविष्कार करने के लिए काफी धन नष्ट किया जा चुका है। किन्तु रोग के मूल कारण और उससे छुटकारा प्राप्त करने की औषधि का आज तक कोई ठोस आविष्कार नहीं किया जा सका है। काफी प्रयत्न हो रहा है कि कोई ऐसे इंजेक्शन का आविष्कार किया जा सके, जो मनुष्य को विषैले तत्त्वों के प्रभाव से मुक्त कर सके। इससे अच्छा होता कि मनुष्यों को जीवन का तरीका सिखलाया जाता, जिससे कि वे ठंड से अपना बचाव कर सकते। स्वस्थ शरीर स्वयं अपनी सुरक्षा करने में समर्थ है। उसे कोई बाहरी सहारा नहीं चाहिए।

ठंड को साधारण इसलिए नहीं कहा जाता कि वह सरल है, बल्कि उसकी जटिलता के कारण ही उसे साधारण बतलाया जाता है। इसीलिए ठंड को भी भ्रान्तियों में जकड़ दिया गया है। डॉ० टिल्डेन कहते हैं कि शीत (कोल्ड) का निकटवर्ती लक्षण जटिल है और दूरगामी लक्षण कैन्सर और तपेदिक अथवा अन्य प्राणघाती बीमारियाँ हैं।

बचपन की सर्दी से लेकर मृत्यु के कैन्सर के बीच रोगों के जटिल लक्षण—जैसे सर्दी, खाँसी, कफ, गले का घाव, कोष्ठ-बद्धता, पेचिश, सिर-दर्द, कमजोरी, थकावट, शंका, भय, बेचैनी

अनिद्रा, दुर्गन्धयुक्त श्वास, गंदी जीभ आदि तीव्र बीमारियाँ शरीर के भीतर अधिक मात्रा में कूड़ा इकट्ठा होने पर पैदा होती हैं। जिनके शरीर में कूड़ा और मैल का अभाव है, उन्हें सर्दी से प्रभावित होते नहीं देखा जाता है।

अधिक लापरवाही से भोजन करने के कारण सर्दी होती है। खान-पान में संयम रखने से सर्दी से बचाव होता है। उपवास के जरिये सर्दी को बहुत जल्दी दूर किया जाता है। सर्दी में अधिक भोजन खिलाने से रोगी की सर्दी और बढ़ जाती है। कभी-कभी सर्दी से न्यूमोनिया और टाइफाइड भी हो जाता है। बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो सर्दी में उसके सभी लक्षण समाप्त न होने तक किसी भी प्रकार का भोजन नहीं करते हैं।

डॉ० वाल्टर सी० अलवर्ज ने अनुभव और प्रयोग से सिद्ध किया है कि गीले वस्त्रों में खड़ा रहने या बैठा रहने पर भी सर्दी नहीं हो सकती है। शीतकाल में भी सर्दी होन का कोई भय नहीं रहता है।

अलवर्ज के मतानुसार सर्दी छूत की बीमारी होती है। अतः एक मनुष्य से दूसरे को सर्दी आसानी से लग सकती है। किन्तु यदि मनुष्य का स्वास्थ्य उत्तम है तो वह सर्दी से अपना बचाव कर सकता है।

जो लोग पहले से दुर्बल और विषाक्त पदार्थों से भरे हैं, वे जब सर्दी से प्रभावित होते हैं, तब उनके शरीर का कूड़ा ठीक से बाहर नहीं निकलता और इसलिए उनकी शारीरिक अवस्था बहुत बिगड़ जाती है। वे लोग निश्चित रूप से असाध्य रोगों के शिकार हो जाते हैं। जब अत्यधिक कूड़े को शरीर से स्वाभाविक रूप में

बाहर नहीं निकाल पाते हैं, तब अतिरिक्त मल को निकाल लिए कोई सहायक निकासी का मार्ग बन जाता है।

एलवरेज व डीह आदि प्रमुख चिकित्सकों ने 'कोपा नामक औषधि को सर्दी में उत्तम और लाभकारी बतलाया इसमें कोडाइन मिला रहता है। अगर शुरू में इसका उपयोग कि जाय तो ८५ प्रतिशत सर्दी के रोगों को रोका जा सकता है। कि पुरानी सर्दी की बीमारी में इसका असर नहीं होता है। मेरे वि से अगर यह दवा न दी गयी होती तो बहुतों का कल्याण सकता था। कहीं भी सर्दी का असर कुछ घण्टों से लेकर दो तीन सप्ताहों तक ही रहता है। सर्दी स्वतः अच्छी हो जाती लेकिन कुछ भी न किया जाय, तभी। कोपामिन का प्रभाव इ कड़ा होता है कि रोगी को कोष्ठबद्धता की शिकायत हो जाती उससे स्नायु-पीड़ित रोगियों को काफी मुसीबतों का सामना क पड़ता है। इससे रोग का कारण भी दूर नहीं हो सकता है।

सर्दी का जब प्रथम लक्षण दिखलाई पड़े, तब हमें क्या कर चाहिए ? उसी समय सभी प्रकार का भोजन बन्द कर देना ठीक है। अधिक पानी पीने के बजाय सिर्फ उतना ही पानी पी उत्तम है, जितनी प्यास लगी हो। जितना कम पानी जाता है, उतना ही शीघ्र आरोग्य प्राप्त होता है। उपवास कम कम चौबीस घण्टों का होना आवश्यक है। अगर तीव्र लक्षण तो तीन दिनों से लेकर चार दिनों तक का उपवास अधिक ला कारी होता है।

उपवास की समाप्ति के पश्चात् भोजन कुछ दिनों तक हलका होना चाहिए। नारंगी या अंगूर का नाश्ता करना अ

रहता है। दोपहर के समय सब्जी का सलाद और शाम के समय मौसमी ताजा फल स्वास्थ्य के ख्याल से श्रेष्ठ आहार माना जाता है। दो-एक दिन तक फलाहार करने के बाद भी बहुत कम भोजन करना ठीक है, जब तक कि रोग के सभी लक्षण लुप्त न हो जायँ।

रोगी के लिए पलंग पर लेटकर उपवास करना अच्छा माना जाता है। शरीर को आराम से रखना चाहिए। रात-दिन बाहर की ताजी हवा रोगी के कमरे में प्रवेश करती रहे। गुनगुने (मन्दोष्ण) पानी से प्रतिदिन स्नान करना ठीक है, किन्तु स्नान अधिक काल तक न किया जाय। यदि काम से फुर्सत न मिलती हो और बिस्तर पर आराम करना सम्भव न हो तो रात को तो जल्दी ही सो जाना चाहिए।

अगर इन साधारण सुझावों का पालन किया जाय तो सर्दी कभी भी निमोनिया का रूप धारण नहीं कर सकती है। भोजन और औषधियों से सर्दी को बढ़ा देने से मृत्यु तक भी हो सकती है।

उपवास से सर्दी का इलाज नहीं किया जाता है, किन्तु सर्दी से उत्पन्न कष्टों को बहुत अंशों तक अवश्य घटाया जा सकता है। उपवास सर्दी के प्रभाव-काल को अधिक कम कर देता है। सर्दी के दूर होने के बाद रोगी की शारीरिक अवस्था काफी अच्छी हो जाती है।

श्लेष्मा-सम्बन्धी अंगों में मीयादी सूजन और जलन के कारण नाक के भीतर काफी जलन होने लगती है। सूखे ज्वर का यह प्रमुख लक्षण है। धूल तथा अन्य वस्तुओं के कण नाक में भर

जाते हैं और दर्द बढ़ जाता है। लोग इसे भी स्थानीय रोग
हैं। वस्तुस्थिति यह है कि शरीर में वर्षों से विजातीय द्रव्य
होता रहता है और उसीसे दुर्बल अंग में रोग फूट पड़
सूखा ज्वर भी समूचे शरीर के विषाक्त होने का ही परिणा

साधारण उपवास से ही इस रोग से मुक्ति मिल सक
अल्प समय के उपवास से ही नाक के द्वारा जहरीले पदार्थ नि
लग जाते हैं और रोग मिटता जाता है। दस दिन से
४-५ सप्ताह तक के उपवास से यह रोग पूर्णतया मिट सकत
उपवास की अवधि रोगी के शरीर के मोटापे के अनुसार
ज्यादा हो सकती है।

२०. दमा और उपवास

प्रमुख ग्रन्थों में दमा कई प्रकार का बतलाया जाता है, जिनमें हृदय-सम्बन्धी, गुरदा-सम्बन्धी और फेफड़ा-सम्बन्धी प्रमुख हैं। उन ग्रन्थों में इसकी जटिलताओं का भी वर्णन किया गया है। हर प्रकार के दमा और उनके अलग-अलग लक्षणों की उत्पत्ति का एक ही कारण है और जिन स्नायुओं और अंगों को ये प्रभावित करते हैं, उन्हीं के आधार पर इन बीमारियों का नामकरण होता है।

गुरदे का दमा (रेनल अस्थमा) बढ़ी हुई गुरदों की बीमारियों में पाया जाता है। हृदय-सम्बन्धी दमा (कार्डियक अस्थमा) खतरनाक हृद्-रोगों में देखा जाता है। इन दोनों प्रकार के दमे में फेफड़े के भीतर अधिक मात्रा में तरल पदार्थ के जमा हो जाने के कारण और फेफड़ों में अन्य परिवर्तन होने से रोगी को साँस लेने में अधिक कठिनाई होती है। हृदय और गुरदे की बीमारी अच्छी हो जाने पर ही दमे से छुटकारा मिल सकता है।

फेफड़ा-सम्बन्धी दमा (ब्रोनशियल अस्थमा) में साँस लेने और खाँसने में काफी तकलीफ होती है। इसका सम्बन्ध साँस-प्रणाली से रहता है। अधिक या कम मात्रा में इससे शरीर में ऐंठन और मरोड़ होती है। सर्दी, जुकाम से अधिक पीड़ित रहने पर इस बीमारी के होने की अधिक सम्भावना रहती है। नाक

गले, नासूर, गैसट्राइटिस, कोलिटिस, मेट्राइटिस, साइसीटिस आदि से काफी समय तक पीड़ित रहने पर दमा के लक्षण प्रकट होते हैं।

दमे का रोग सभी स्थानों में सभी वर्ग के मनुष्यों में पाया जाता है। शीत और उष्ण प्रदेशों में, नम और खुश्क जलवायुवाले भागों में, ऊँचे और नीचेवाले भू-भागों में धनी और गरीब, ऊँच व नीच, छोटे व बड़े, मोटे और दुबले, अंधकार व प्रकाश आदि सभी जगह संसारभर में दमे की बीमारी व्याप्त है। स्त्री-पुरुषों और छोटे बच्चों में भी दमे का रोग विकसित होता है। मोटे-ताज़े पशुओं में भी दमा होता है। जिन अनुकूल जलवायुवाले देशों में दमे के रोगी को उपचार के लिए भेजा जाता है, वहाँ के भी आदिनिवासियों में प्रायः दमे का रोग बढ़ते हुए देखा जाता है।

दो व्यक्ति वर्षों से गलत तरीके से जीवन-यापन कर रहे हैं। यह भी उतना ही लापरवाह है, जितना वह। किन्तु एक व्यक्ति को दमा और दूसरे व्यक्ति को जोड़ों की सूजन से पीड़ित होते देखा जाता है। क्यों एक व्यक्ति को अपनी गलतियों का दण्ड एक तरह से और दूसरे को अन्य तरीके से भोगना पड़ता है? क्यों एक व्यक्ति को गुरदे की बीमारी और दूसरे को पित्ताशय की पथरी का रोग पकड़ता है? कड़ी ठंडक से समान रूप में प्रभावित दोनों व्यक्तियों को न्यूमोनिया क्यों नहीं होता? क्यों एक को न्यूमोनिया और दूसरे को सर्दी-जुकाम? क्यों एक व्यक्ति को, जिसे वर्षों से फेफड़े-सम्बन्धी सर्दी-जुकाम है, फिर भी दमा नहीं होता? क्यों दूसरे व्यक्ति को, जिसे फेफड़े-सम्बन्धी सर्दी-जुकाम के बिलकुल वे ही लक्षण हैं, दमा भी है?

दमा (श्वास-रोग) का सम्बन्ध नाड़ी-मण्डल से रहता है। इसका अर्थ यह कि उसमें पहले से ही नाड़ी-सम्बन्धी विकार निश्चित ही रहा है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि रोगों की उत्पत्ति प्रारम्भ में शरीर की बनावट-सम्बन्धी कमजोरियों के कारण होती है। रोगों की उत्पत्ति का दूसरा कारण कीट-डिंभ-सम्बन्धी अभाव है, जो कि माँ-बाप एवं पुरखों के दोषयुक्त आहार के कारण उत्पन्न होते हैं।

बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू हृदय और फेफड़े दोनों को नुकसान पहुँचाते हैं और कमजोर बनाते हैं। अत्यधिक भोजन से यकृत और गुरदों को हानि पहुँचती है। अत्यधिक शारीरिक परिश्रम से हृदय और जोड़ों पर अधिक जोर पड़ता है। भय के कारण हृदय और नाड़ी-मण्डल कमजोर हो जाता है। ये हमारे जीवन के प्रचलित तरीकों के नमूने हैं, जिनसे शरीर के अंगों व प्रणालियों पर गलत तौर पर दबाव पड़ता है, उनके कार्यों को दुर्बल व कमजोर बनाते हैं और शारीरिक रोगों की नींव डालते हैं।

अन्य रोगों की भाँति दमे की उत्पत्ति रक्त व मांस की उस अवस्था से होती है, जिसे हम विजातीय द्रव्य कहते हैं। ये विजातीय द्रव्य हमारे दोषपूर्ण गलत तरीकों से स्नायुओं की शक्ति को अधिक मात्रा में खर्च कर देने पर शरीर में फैल जाते हैं। शरीर में स्नायु-सम्बन्धी थकान और अधिक मात्रा में कमजोरी आ जाती है। शरीर के संचालक अंगों की गति धीमी पड़ जाती है। परिणामस्वरूप कूड़े का निकलना रुक जाता है, जिससे रक्त, मांस, मज्जा और तन्तुओं में विजातीय द्रव्य अधिक मात्रा में आ जाते हैं।

जरूरत से अधिक मात्रा में कूड़ा और विजातीय द्रव्य शरीर में भर जाने से शरीर में जलन और सूजन पैदा हो जाती है। इस प्रकार के रोगियों में दमे की नींव श्वास-प्रणाली में पड़ती है।

दमा-सम्बन्धी यह व्याख्या बिलकुल ठीक है। विजातीय द्रव्यों के शरीर से बाहर होने पर, स्नायु-शक्ति के स्वाभाविक तौर पर स्वस्थ होने से और जीवन को उचित तरीकों पर चलाने से दमे के समस्त लक्षण दूर हो जाते हैं और रोगी को दमे से फिर दुःख भोगना नहीं पड़ता। अतः इन सब कार्यों के लिए उपवास से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है।

रोगी केवल रोग से छुटकारा ही नहीं चाहता, बल्कि स्थायी रूप से स्वस्थ बना रहना भी चाहता है। लम्बे उपवासों के द्वारा सुगमता से शीघ्रतापूर्वक दमे के रोगियों को रोग-मुक्त और स्वस्थ दोनों बनाया जाता है, किन्तु उपवास के पश्चात् जीवन के श्रेष्ठ नियमों पर चलना स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक है।

उपवास कब तक चालू रखा जाय, यह रोग व रोगी दोनों की अवस्था पर निर्भर है। रोगी को बिस्तर पर चित लेटाकर २४ से ३६ घंटों का उपवास कराने से सुगमतापूर्वक साँस लेने और सोने की स्थिति में ले आया जाता है। किन्तु उनकी श्वास-क्रिया बिलकुल स्वाभाविक नहीं रहती है। कई दिनों तक रोगी के फेफड़े में खड़खड़ाहट का शब्द होता रहता है और कफ-पित्त बराबर निकलता रहता है।

फेफड़ों के अस्वाभाविक आवाज को रोकने के लिए रोगियों के उपवास को चालू रखने का प्रयत्न करना चाहिए। अधिक

कृशकाय और दुर्बल व्यक्तियों के लिए अधिक लम्बे उपवास की मैं सर्वदा सिफारिश नहीं करता। सुरक्षा की दृष्टि से जितना लम्बा उपवास सम्भव हो, उतना ही करवाना उचित है। उसके बाद उपवास समाप्त करवा दें। फिर कुछ दिनों तक खाने के लिए उन्हें बिलकुल हलका पथ्य दें। इस तरह कुछ दिनों के बाद उनसे फिर दूसरा उपवास प्रारम्भ करवाया जाय। पुराने दमे के रोग में कई छोटे उपवास और बीच-बीच में उचित पथ्य देते हुए उन्हें पूर्ण स्वस्थ बनाया जा सकता है।

उपवास के अन्य विशेषज्ञों का मत है कि उपवास में दमे के सभी लक्षण लुप्त हो जाने पर भी रोगी को ३६ घंटे तक कोई पथ्य नहीं देना चाहिए। किन्तु ये लोग भी दुबारा उपवास कराने का समर्थन करते हैं। यदि किसी कारण से दमे के रोगी का उपवास समाप्त करा दिया गया हो, तो वह दुबारा उपवास प्रारम्भ कर सकता है। रोग का पुनः आक्रमण न हो सके, इसलिए पूरा उपवास करना अच्छा रहता है।

दमे के रोगियों के सम्बन्ध में मेरा मत इससे कुछ भिन्न है। यदि सम्भव हो तो काफी लम्बे उपवास अवश्य ही अधिक लाभदायक और संतोषजनक होते हैं।

२१. जोड़ों की सूजन

रोगी से जब यह कहा गया कि "उपवास से कम-से-कम दो साल में जोड़ों की सूजन (आरथाइटिस) को दूर किया जा सकता है, बशर्ते कि वह स्वास्थ्य-सम्बन्धी अन्य नियमों का ठीक से पालन करे, तो रोगी आनन्द से चीख उठा : "दो वर्ष ? जब अट्ठाईस वर्ष उपचार में व्यतीत हो चुके हैं, तब दो वर्ष और बिताने में कितना समय लगेगा ?"

वह किसी अनुसंधानशाला में जीवाणु-विज्ञान का एक विशेषज्ञ था। २८ वर्ष पहले जब जोड़ों की सूजन के प्रथम लक्षण दिखलाई दिये, तब उन्होंने अपने स्वास्थ्य पर साधारण ध्यान दिया। उन्होंने चिकित्सकों से सम्पर्क रखा तथा उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण किया। वे लोग सिर्फ दर्द को दबाने की दवा देते थे। धीरे-धीरे रोग बढ़ता गया। अन्त में रोग को असाध्य समझकर चिकित्सकों ने इलाज करना बन्द कर दिया।

साल पर साल बीतते गये, शरीर के एक जोड़ से दूसरे जोड़ पर रोग का असर बढ़ता गया। अंग टेढ़े होने लगे। केवल बैसाखी के सहारे झुककर किसी तरह वे चलते थे। दर्द के कारण सिर को अगल-बगल हिलाने-डुलाने में भी वे बिलकुल असमर्थ थे।

रोगी को बतलाया गया कि "कुछ जोड़ों में सुन्नता समा गयी है। सुन्न अंगों में चेतना पैदा करना सम्भव नहीं है। वे

अकड़े ही रहेंगे, हिलाये-डुलाये नहीं जा सकेंगे। हाँ, दर्द को जरूर दूर कर दिया जायगा। आप कार्य करने के योग्य बन जायेंगे।"

उस व्यक्ति ने ३६ दिनों का एक लम्बा उपवास किया। उनके स्वास्थ्य में काफी सुधार हो गया। जोड़ों का दर्द दूर हो गया। जोड़ों की सूजन कम हो गयी और पुराने जकड़े हुए जोड़ों में हलचल शुरू होने लगी।

ऐसी बीमारी के लिए दो वर्ष का समय अधिक नहीं कहा जा सकता। उनके भीतर हर सम्भव प्रगति लाने में पूरे चार साल लगे। इस बीच उन्होंने दूसरा एक लम्बा उपवास भी किया था और कुछ दिनों के छोटे-छोटे कई उपवासों को भी उन्होंने अच्छी तरह पूरा किया। उपवासों की समाप्ति के बाद पथ्य पर सावधानी के साथ ध्यान दिया गया था। प्रतिदिन उन्हें धूप-स्नान करना पड़ता था। स्वास्थ्य में प्रारंभिक कुछ सुधार होने पर रोगी से प्रतिदिन कुछ व्यायाम भी करवाया जाता था।

उपवास के परिणामस्वरूप उनकी रीढ़ की हड्डी बिलकुल सीधी हो गयी। हाथ-पैर बिलकुल स्वाभाविक रूप में कार्य करने लगे। सिर को भी वे घुमा-फिरा सकते थे। अब वे सीधे होकर चल रहे थे। उन्हें छड़ी या अन्य किसी सहारे की अब जरूरत नहीं थी। किसी प्रकार का दर्द भी उन्हें नहीं था। खूब परिश्रम से अपना कार्य भी कर रहे थे। उन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो स्वास्थ्य की कोई जीती-जागती तसवीर डोल रही है।

सात वर्षों तक उनका स्वास्थ्य बना रहा। इस बीच दर्द और सूजन का कोई लक्षण दुबारा प्रकट नहीं हुआ। उनमें इतनी

अधिक शक्ति थी कि अपने नियमित कार्यों के अतिरिक्त वे बहुत-से राजनैतिक कार्यों में भी भाग लेते थे। एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए इससे अधिक और क्या चाहिए ?

यह एक पुराने जटिल रोग का उदाहरण है, जिसमें आरोग्य प्राप्त करने में काफी लम्बे समय की आवश्यकता पड़ी थी। एक दूसरा उदाहरण है, जिसमें कम समय में रोगी को आराम पहुँचाया गया है, क्योंकि रोगी के जोड़ों में जकड़ और सूजन कम थी। कनाडियन स्कूल के प्रधान की श्रीमती, जो चालीस वर्ष की थीं, कुछ महीनों से जोड़ों के भीतर सूजन होने से पंगु बन गयी थीं। उन्हें चलने-फिरने में काफी तकलीफ होती थी। उनके चिकित्सक ने बताया कि "दवाओं से क्षणिक आराम पहुँचा सकता हूँ, किन्तु रोग को बढ़ने से रोकना मेरे वस की बात नहीं।" वे वहाँ से मेरे यहाँ आयीं और तीन सप्ताह तक उपवास करती रहीं। उनका दर्द और सूजन दूर हो गया और जोड़ों में स्वाभाविक संचार-क्रिया होने लगी।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज तीन वर्षों के बाद भी वे इस रोग से मुक्त बनी हुई हैं और दुबारा सूजन-जलन तथा दर्द से उन्हें पीड़ित नहीं होना पड़ा। उपवास के प्रति उनकी आस्था और उत्साह दूसरों के लिए अनुकरणीय है।

ऐसे लक्षणों से पीड़ित सैकड़ों रोगियों को उपवास के माध्यम से आरोग्य-लाभ हो रहा है। सिर्फ उन्हीं रोगियों को दुबारा इस रोग से आक्रान्त होते देखा गया है, जो अज्ञान के कारण पहले की गलतियों को दुहराते हैं।

स्वस्थ रहने के लिए सामान्य समझदारी की जरूरत पड़ती है। जीवन के अच्छे नियमों पर थोड़ा-सा ध्यान देना पड़ता है। विवेकपूर्ण भोजन करने में भी उतना ही समय व्यय होता है, जितना कि अविवेक और अज्ञानपूर्ण भोजन में। शुद्ध हवा में श्वास लेने में उतना ही समय लगता है, जितना कि अशुद्ध हवा में। वास्तव में सही तरीकों से जीवन विताने में गलत जीवन की अपेक्षा अधिक नहीं, बल्कि कम ही समय लगता है।

जब हम स्वल्प आहार से सन्तुष्ट और सुखपूर्वक जीवन बिता सकते हैं, तब हमें हर भोजन के बाद अम्लत्व-नाशक औषधि खाने की क्या जरूरत है ? जब हम उचित जीवन से सर-दर्द से बच सकते हैं, तब हमें एसपीरिन खाने की क्या आवश्य-कता है ? अगर हमारे यकृत स्वस्थ हैं, तो प्रतिदिन रेचक औषधि लेने की आदत क्यों डाली जाय ?

संयमी और समझदार व्यक्तियों के लिए हरएक शारीरिक तकलीफ एक विशेष अर्थ रखती है। वह हमें संकेत देकर खतरों से सावधान कर देती है कि हरएक 'अति' से बचो। हमें उसकी चेतावनी पर ध्यान देना चाहिए। प्रकृति एक महान् शिक्षक है। यदि हम उसके आदेशों को स्वीकार करें, चेतावनी के संकेतों का पालन करें, तो सुन्दर स्वास्थ्य और लम्बी आयु हमारी मुट्ठी में है।

अधिक पीड़ा के कारण और मनुष्यों को पूर्ण रूप से पंगु बना देनेवाले रोगों में गठिया बहुत ही भयानक और खतरनाक है। पहले वह जोड़ों में शुरू होता है; और यदि ठीक से उपचार नहीं किया गया तो आगे चलकर रोगी आधे या पूरे शरीर से

बेकार बन जाता है। वह काम-काज करने योग्य नहीं रह जाता है। लगातार कठिन पीड़ा के कारण मनुष्यों की मानसिक शांति भंग हो जाती है। वह न तो आराम कर सकता है और न सुख की नींद सो सकता है। यद्यपि यह बीमारी अक्सर शीत एवं नमीवाले देशों में अधिक होती है, फिर भी संसार में सर्वत्र पायी जाती है।

जोड़ों की सूजन अनेक प्रकार की होती है। शरीर के जोड़ों के चारों ओर स्नायुओं की सूजन और दर्द इस रोग के प्रमुख और प्रथम लक्षण हैं। जैसे-जैसे जलन बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे जोड़ों को हिलने-डुलने से असमर्थ बना देता है। मांस-पेशियों और अस्थि-बन्धक स्नायुओं में तनाव और सिकुड़न से अधिक दर्द बढ़ जाता है। जोड़ों की जकड़न से गम्भीर और जटिल समस्या उत्पन्न हो जाती है। इस पीड़ा को गठिया कहते हैं। यही गठिया धीरे-धीरे बढ़कर प्रायः कोमल अस्थियों पर धावा करती है, जो जोड़ों की हड्डियों के अन्तिम भाग पर गद्दी की तरह बिछी रहती हैं। कभी-कभी लचीली मुलायम हड्डियाँ विकृत हो जाती हैं या बिलकुल खत्म हो जाती हैं।

यदि रोग बढ़ने के कारण को नहीं दूर किया गया, तो हड्डियों के सिरे बिलकुल जुड़ जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जोड़ बिलकुल अकड़ जाता है, गतिहीन बन जाता है। हड्डियों के चिपकने से दर्द तो दूर हो जाता है, किन्तु जोड़ हमेशा के लिए बिलकुल बेकार हो जाता है।

गठिया की सूजन एक दिन में नहीं होती है। हृष्ट-पुष्ट व्यक्तियों में पुरानी आदतें, जो उन्हें दुर्बल भी बनाती हैं, वर्षों

में रोग की इस अवस्था तक पहुँचाती हैं। ऐसे व्यक्ति वर्षों तक रोग को रोक देते हैं और बीमारी भी धीरे-धीरे उन्हें एक दिन विकृत और पंगु बनानेवाली खतरनाक स्थिति में पहुँचा देती है।

जोड़ों में जलन के पूर्व सामान्य दर्द होता है। मनुष्य कुछ समय तक अस्वस्थ रहते हैं। कुछ समय तक ठीक से नींद नहीं आती है। भोजन में कुछ अरुचि रहती है। कभी-कभी भोजन ठीक से हजम नहीं होता है। इनसे आभास मिलता है कि हम भीतर से स्वस्थ नहीं हैं। जब तक हम इन छोटे-छोटे लक्षणों के प्रति आँख मूँदे रहेंगे, जो भविष्य में आनेवाली भयंकर वीमारियों के प्रति पहले से हमें सावधान कर रहे हैं, तब तक हम रोगों से कष्ट पाते रहेंगे। 'आरथ्राइटिस' को रोकने के लिए हमें अपने जीवन के प्रचलित तौर-तरीकों में स्वास्थ्यवर्द्धक परिवर्तन करना वहुत ही आवश्यक है।

हम देखते हैं कि प्रायः मनुष्यों में रोगों की अवहेलना करने की प्रवृत्ति अधिक बढ़ रही है। वे लोग मांस-पेशियों के दर्द को, जोड़ों की साधारण जकड़ को, नाड़ियों की सूजन को, कमर के दर्द को, कूल्हे और घुटनों की गठिया को पहले साधारण समझते हैं। इनकी ओर से बिलकुल वेफिक्र रहते हैं। दुःख का विषय यह है कि ऐसी अवस्था में भी वे लोग खाने-पीने में कोई संयम नहीं करते हैं; औषधियों, मालिश, गरम जल-स्नान आदि से रोगों को दबाने का प्रयत्न करते हैं और रोग को बढ़ावा देनेवाली पुरानी आदतों को नहीं छोड़ते हैं।

रोगों को दबानेवाले साधन रोगों के मूल कारणों को दूर नहीं करते हैं और रोग को बढ़ने से रोक भी नहीं सकते, जिसके कारण रोग पुराना और शरीर निकम्मा हो जाता है।

इस रोग का प्रमुख और स्थूल कारण विजातीय द्रव्य हैं। ये विजातीय द्रव्य दोषयुक्त भोजन, पेय पदार्थ, मानसिक आवेग, विषय-वासना एवं अन्य कार्यों के परिणाम हैं। वचपन में अधिक भोजन करने से विजातीय द्रव्यों के बीज पड़ते हैं। कोई नहीं वता सकता कि कितने विजातीय द्रव्यों के जमा होने पर जोड़ों के सूजन की वीमारी पैदा होती है। यह कह सकते हैं कि सैकड़ों-हजारों दोष मिलकर इस रोग की सृष्टि करते हैं।

जोड़ों की सूजन का कारण विजातीय द्रव्यों के कारण पोषक तत्त्वों का दूषित होना है। दुर्वल व्यक्तियों में ये दूषित पदार्थ रक्त, मांस, मज्जा आदि में वर्षों से एकत्र होते रहते हैं। इन्हींके कारण प्रारम्भ में रोग में जलन व दर्द पैदा होता है और धीरे-धीरे जोड़ों में अस्वाभाविक परिवर्तन हो जाता है। उनके जोड़ों में जकड़ पैदा हो जाती है। सवेरे उठते ही चलने-फिरने में उन्हें कठिनाई मालूम होती है। घुटने, केहुने, कूल्हे आदि के जोड़ों में जोर पड़ने पर काफी दर्द होता है। कभी-कभी दर्द न होने के कारण और शरीर-रचना में कोई विकार न होने से रोगी भूल से जोड़ों की जकड़न को एक स्थानीय विकार समझता है।

भोजन में असंतुलन—जैसे अन्न, चीनी, कॉफी, चाय, शराव, धूम्रपान आदि का अतिरिक्त मात्रा में सेवन करने से यह रोग वढ़ता है। शरीर को दुर्वल वनानेवाली मानसिक चिन्ताएँ, विषय-वासनाएँ और अत्यधिक शारीरिक परिश्रम रोग के वढ़ाने में सहायक होते हैं। इन सवके अतिरिक्त भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह रोग उन्हीं लोगों में अधिक पाया जाता है, जिनके शरीर में पहले से वात-विकार होता है।

गठिया की पीड़ा में विजातीय द्रव्यों के अतिरिक्त पोषक तत्त्वों की भी कमी रहती है। चूने का जमा होना और पथरी का बनना इस रोग के अंग हैं। पोषक तत्त्वों के दूषित होने से पित्ताशय की पथरी, गुरदे की पथरी, धमनियों का कड़ापन, हृदय में और पैरों में चूने का एकत्र होना और शरीर के अन्य भागों की पथरी आदि सभी रोग होने लगते हैं।

इन सबके कारण जब रोगों से बचाव करने की शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है, तब बदहजमी, ठंढ, चिन्ता आदि का दबाव पड़ने पर रोग भयानक हो जाता है।

विजातीय द्रव्यों की अधिकता और अँतड़ियों की कमजोरी के साथ-साथ दाँतों एवं अन्य भागों के मवाद से भरे फोड़े रोगी की अवस्था को और जटिल बना देते हैं।

शल्य-चिकित्सा के द्वारा कभी-कभी रोगियों के प्रथम व द्वितीय श्रेणी के लक्षणों को थोड़े समय के लिए अस्थायी तौर पर दबा दिया जाता है। किन्तु जब ये लक्षण पुनः प्रकट होने लगते हैं, तब विज्ञान की सफलताओं पर पानी फिर जाता है।

यद्यपि इस रोग का उपचार अनेक प्रकार से किया जाता है, तो भी स्थायी लाभ प्राप्त होना असम्भव है।

लम्बागो, मसकुलर र्‍यूमूटिज्म, इनफ्लेमेटरी र्‍यूमैटिज्म गाउट, आरथ्राइटिस आदि किसी भी अवस्था की क्यों न हो, इस रोग से मुक्त होने के लिए और सर्वदा स्वस्थ बने रहने के लिए सबसे पहले बुरी आदतों का त्याग करना जरूरी है। यही रोगों का जन्म-स्थान है और इनका अन्त पुरानी बीमारियाँ और असामयिक मृत्यु है।

हमें मालूम है कि रोगों से लड़ने की शक्ति हमारे शरीर में ही है, तो हम इसे उचित अवसर दें। पहले उपवास से शरीर के विजातीय द्रव्यों को दूर करें। इसके पश्चात् खान-पान में नया परिवर्तन करके रक्त के दोषों को दूर कर उसे शुद्ध बनायें। इससे आश्चर्यजनक परिणाम होगा।

जोड़ों की शल्य-चिकित्सा न सफल हुई है और न हो सकती है, क्योंकि बार-बार रोगों की पुनरावृत्ति और बार-बार काटने-फेंकने की क्रिया से रोगियों की मृत्यु हो जाती है।

उपवास से शरीर के पोषक तत्त्वों में बहुत शीघ्र उचित परिवर्तन होता है। उपवास में विजातीय द्रव्यों के विघटन के द्वारा शरीर की रासायनिक क्रियाओं में बड़ी तेजी से शुद्धि होने लगती है। बिना किसी खतरे और नुकसान के जोड़ों की पीड़ा उपवास से दूर हो जाती है।

बहुत-से विशेषज्ञ आरथ्राइटिस के रोगियों से व्यायाम भी करवाते हैं, ताकि जोड़ों में जकड़न पैदा न हो। किन्तु इससे जोड़ों में जकड़न पैदा होने का डर बना रहता है। क्योंकि जोर देकर दबाव डालने के कारण सूजन और दर्द अधिक बढ़ जाता है। मेरे विचार में उपवास-काल में रोगी को पूरा विश्राम लेना उचित होगा। उपवास से शरीर स्वतः समर्थ बन जाता है, जिससे जोड़ों की जलन, सूजन और जमावट सब दूर हो जाती है। इस प्रकार अकड़ा जोड़ भी ढीला हो जाता है और बिना किसी दर्द के उसका उपयोग किया जा सकता है।

पुरानी आरथ्राइटिस में रोगियों को पुनः स्वस्थ होने में काफी समय लगता है। कितने समय में बीमारी दूर की जा सकती है, यह निम्नलिखित तथ्यों पर निर्भर करती है :

'रोगी की आयु, वजन, बीमारी की स्थिति, बीमारी की मीयाद, जोड़ों की बरबादी की मात्रा, जोड़ों के जकड़न की मात्रा, खान-पान-सम्बन्धी पुरानी आदतें, स्नायुओं की संचित शक्ति का परिमाण, हृदय-रोग आदि किसी जटिल बीमारी का होना, रोगी का व्यवसाय, स्वभाव, वातावरण इत्यादि।' •

२२. पाचन अंग के नासूर

(पेप्टिक अल्सर)

सुप्रसिद्ध 'मेयो क्लिनिक' के संस्थापक विलियम जे० मेयो, एम० डी० की मृत्यु पेड़ू के छिद्रयुक्त नासूर से हुई थी। चिकित्सक मेयो नासूर के एक बहुत बड़े विशेषज्ञ थे। उनके पेट का एक आपरेशन किया गया, लेकिन वे पूरे स्वस्थ नहीं हुए।

डॉ० मेयो की मृत्यु के कुछ वर्ष बाद उसी क्लिनिक से घोषणा की गयी कि नासूर के उपचार के लिए आपरेशन को सफल उपचार नहीं कहा जा सकता। यद्यपि नासूर का आपरेशन अब भी हो रहा है, तथापि पहले से कम हो गया है।

एक चिकित्सक की, जिस रोग का वह विशेषज्ञ है, उसी रोग से मृत्यु होना, कोई असाधारण बात नहीं है। तथ्य यह है कि वे अपनी ईजाद की हुई औषधियों का प्रयोग करते हैं। वे स्वयं अपना बचाव नहीं कर सकते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उनका ज्ञान अधूरा होता है, जिस पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता। एक व्यक्ति रोग के वास्तविक कारण जाने बिना भी एक बहुत बड़ा सर्जन हो सकता है। पेप्टिक अल्सर, हाइँण्ड, पाइलोरिस, फिब्राइड, ट्यूमर, गाल्स्टोन, किड्नी-स्टोन आदि रोगों में रोग के वास्तविक कारण को बिना समझे ही अक्सर आपरेशन किये जाते हैं।

पेट के रोगों के बहुत से लक्षण हैं, किन्तु वे इतने साफ नहीं होते हैं कि सर्व-साधारण लोग भी उन्हें समझ सकें।

यह सही बात है कि उदर-नासूर के कुछ लक्षण बिल्कुल निश्चित रहते हैं। जैसे पेट में दर्द का रहना, उदर के गर्त का कोमल बन जाना, उल्टी और रक्त-स्राव (हेमरहेज) आदि। किन्तु ये सभी लक्षण कैन्सर या उदर-सम्बन्धी किसी कम खतरनाक बीमारी के भी हो सकते हैं। इसी कारण केवल लक्षणों के आधार पर अल्सर का निदान करना बहुत कठिन है। एक्स-रे और फ्लोरोस्कोपिक परीक्षण के द्वारा भी कोई ठीक परिणाम नहीं निकलता है। अक्सर जहाँ अल्सर नहीं रहता, एक्स-रे वहाँ अल्सर बतलाता है और जहाँ अल्सर होता है उसे बताने में अक्सर वह असफल रहता है।

यह बतलाया जाता है कि शरीर के भीतर कुछ रासायनिक क्रिया होती है, जिससे गैस्टिक रस उदर को ही हजम कर जाता है। कुछ लोगों का विश्वास है कि मानसिक उत्ताप से यह रासायनिक परिवर्तन होता है। एक बार पतली झिल्लियों के खत्म हो जाने पर पेट का रस निश्चित रूप से स्नायुओं पर प्रभाव डालता है और अल्सर को बढ़ाता है। अक्सर उदर और आँतों को यह बुरी तरह प्रभावित करता है।

पचाने की उपर्युक्त क्रिया इतनी मन्द रफ्तार से होती है कि खतरनाक अवस्था तक पहुँचने में काफी वर्ष लग जाते हैं।

स्वस्थ व्यक्तियों में अधिक एसिड के बावजूद भी यह स्वतः हजम करने की क्रिया नहीं पायी जाती है। पेट की ग्रन्थियों से जो स्वाभाविक एसिड बाहर निकलता है, वह प्रोटीन-युक्त भोजनों को पचाने के लिए आवश्यक है। यदि किसी कारण से अधिक मात्रा में एसिड बाहर होने लगे, तो कष्ट और असुविधा होने लगती है। किन्तु उदर की पतली झिल्लियाँ नष्ट नहीं हो सकती हैं। उदर के पदार्थों का बहाव नरेटी (मुख से लेकर पेट तक

भोजन के रास्ते) की ओर हो सकता है और जिसके कारण हृदय में जलन पैदा हो सकती है, किन्तु इनसे झिल्लियों की कोई क्षति नहीं होती है।

जो व्यक्ति अधिक मात्रा में चीनी और शर्बत के आदी हैं, जो भोजन के साथ मदिरा भी सेवन करते हैं और जिनके भोजन में भोज्य पदार्थों का दोषपूर्ण सम्मिश्रण रहता है, अधिक दिनों तक हृदय की जलन के कारण उनके उदर में भी अधिक पीड़ा और सूज़न होने लगती है; किन्तु इस हद तक उदर और नरेटी की दीवारें नष्ट नहीं हो सकेंगी।

पेप्टिक अल्सर शरीर के बहुत से भागों में होता है—जैसे नाक, नाड़ी, मुख, जीभ, गला, बड़ी आँत, मूत्राशय, गर्भ, गरदन, योनि, पित्ताशय की थैली इत्यादि। शिराओं के अल्सर की तरह पेप्टिक अल्सर में भी गैस्ट्रिक जूस से कोई क्षयकारी प्रभाव नहीं पड़ता है।

गैस्ट्रिक और ड्यूडेनल अल्सर के रोगियों के इतिहास से ज्ञात होता है कि बचपन से ही रोगी को उदर व आँतों में सूजन और जलन की शिकायत रही है। खान-पान के गलत तरीकों से ये दर्द बराबर बढ़ते रहे। समय-समय पर पीड़ा को औषधियों से दबाये जाने के कारण जलन, पीड़ा, सूजन और स्नायुओं का कड़ापन अल्सर में बदल जाता है।

कड़ापन बढ़ने के कारण धमनियों की रक्त-संचार-प्रणाली में रुकावट हो जाती है। आक्सीजन और पोषक पदार्थों के अलग हो जाने पर स्नायु शिथिल होने लगते हैं और खुला घाव या अल्सर बढ़ जाता है।

इस प्रकार अल्सर बढ़कर कैन्सर में भी बदल जाता है। बार-बार पेट की पीड़ा का अन्त अल्सर में होता है। बचपन से जवानी के बीच बहुधा गैस्ट्रिक तकलीफ के कारण बीसों वर्ष के बाद अल्सर होता है। अल्सर एक आर्गेनिक (सप्राण) बीमारी है, जिसके माने होता है, रोग से प्रभावित अंगों की बनावट में अस्वाभाविक परिवर्तन।

जीवित अंगों के परिवर्तन धमनी और शिराओं में दीखते हैं। वे कठोर और विकृत बन जाती हैं। कड़ेपन के कारण रक्त-संचार-प्रणाली में परिवर्तन होता है। इनका विशेष प्रभाव स्नायुओं के क्षय के रूप में देखा जाता है।

साधारण विश्वास है कि उदर में एसिड की अधिकता स्थानीय दशा के कारण ही होती है। एसिड की अधिकता रोगियों के समूचे शरीर की अवस्थाओं पर भी निर्भर करती है, किन्तु चिकित्सक उसे एक स्थानीय मानकर उपचार करते हैं।

यदि गैस्ट्रिक जलन एवं सूजन बराबर जारी रही, विषैले पदार्थों को तथा उनके उत्पत्ति-विषयक कारणों को दूर नहीं किया गया, तो पित्ताशय की नली, थैली और यकृत में भी जलन और सूजन फैल जाती है। अथवा यह जलन और सूजन पाचन-रस की थैली में भी प्रवेश करती है। रोगी के रहन-सहन में परिवर्तन होने से जलन और सूजन बढ़ती है और बढ़कर एक अंग से दूसरे अंग में फैलती है। इसीसे नयी बीमारियाँ भी उत्पन्न होती हैं।

अल्सर के रोगियों को भोजन खिलाना एक कठिन समस्या है। पहले भोजन पचाने की शक्ति बहुत कमजोर हो जाती है।

तरह-तरह के भोजनों के कारण अल्सर से आक्रान्त भागों में जलन और पीड़ा बराबर बनी रहती है।

आप कल्पना कर सकते हैं कि जो व्यक्ति पेट की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है, उसका जीवन कितना दुखी होगा। एसिड के अधिक वाहर निकलने के कारण पेप्टिक अल्सर के रोगियों को कई बार नरम भोजन थोड़ा-थोड़ा दिया जाता है। इसका उद्देश्य एसिड को कम करने और खत्म करने का रहता है। यथासम्भव अल्सर की यांत्रिक जलन को भी वे घटाते हैं।

अधिकतर तीन या चार घंटों के बाद और कभी-कभी रात में भी रोगियों को भोजन देते हैं। इससे अधिक एसिड बराबर बाहर निकलता रहता है और रोगी की जैसी की तैसी अवस्था बनी रहती है। यह भी केवल उन्हें थोड़ा आराम पहुँचाने के उद्देश्य से किया जाता है, जो कि पथ्य-सम्बन्धी सही तरीका नहीं माना जा सकता। दूध, क्रीम, कम भोजन, नरम पथ्य आदि सभी रोग के लक्षणों को कुछ दबाने के लिए ही होते हैं। इनके द्वारा अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति दुर्लभ है। इनसे अल्सर को अधिक बढ़ावा मिलता है।

रोग के लक्षणों को अस्थायी तौर पर दबाने के लिए औषधियों का व्यवहार किया जाता है। दर्द को दूर करने की दवा, कमजोरी घटाने की दवा, पेट को ठीक करने की दवा, एसिडिटी को मिटाने की दवा आदि से थोड़े समय के लिए रोगियों को आराम पहुँचता है। लेकिन ये रोग के कारणों को दूर नहीं कर पातीं, अतः उनसे स्वास्थ्य-सुधार भी नहीं हो सकता। उदर की रक्तवाहक ग्रंथियों को बरफ की तरह जमाने की आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली से भी कोई स्थायी लाभ नहीं होता है। इनसे

रोगियों की पाचन-प्रणाली विकृत होती है और अल्सर का मूल कारण दूर नहीं होता।

पेप्टिक अल्सर के आपरेशन आज भी हो रहे हैं। वे अब भी अधिक असन्तोषपूर्ण हैं। अधिकतर गैस्ट्रिक अल्सर में उदर की दीवार में जलन, पीड़ा और सूजन रहती है। जहाँ पर अधिक सूजन रहती है, वहाँ पर अल्सर बढ़ता है। आपरेशन के द्वारा अल्सर को हटा देने से भी सूजन का क्षेत्र साफ नहीं हो पाता है। दूसरी जगह फिर सूजन और जलन पैदा होने से दुबारा अल्सर हो जाता है। रोग के दुबारा प्रकट होने का मतलब बिल्कुल स्पष्ट है कि आपरेशन के द्वारा रोग के मूल कारणों को नहीं हटाया गया। इस तरह शल्य-चिकित्सा के द्वारा रोगी का स्वस्थ होना असम्भव है। उदर के किसी बड़े भाग को काटकर हटा देने से रक्ताल्पता निश्चित है।

गैस्ट्रो-एनटेरोश्टोमी (उदर से छोटी आँत में जाने का मार्ग) का आपरेशन बड़ा खतरनाक और जीवन को दूभर बना देनेवाला होता है।

रोगी के ऊपर एक आपरेशन के बाद दूसरे आपरेशन का क्रम बराबर चलता रहता है, केवल पित्ताशय की थैली में छेद बनाते हैं या उसे कभी-कभी हटा देते हैं। फिर पेट का तीसरा आपरेशन करते हैं।

अल्सर से कुछ रक्त निकल जाने के कारण रोगियों में रक्ताल्पता नहीं होती है, बल्कि शरीर में रक्त-निर्माण की क्रिया शिथिल और पोषक तत्त्वों के दूषित होने से होती है।

रोगियों की शारीरिक दुर्बलता और कमजोरी के लिए अल्सर को दोषी ठहराना उचित नहीं है, क्योंकि वर्षों से पोषक

तत्त्वों में विकार और दोष पलते हैं और बाद में वे ही अल्सर को जन्म देते हैं। यही कारण है कि अल्सर का स्थानीय उपचार पूर्णतः असफल रहता है।

कोई फोड़ा चाहे शरीर के वाहरी भाग में हो या चमड़े के नीचे पाचक अंगों में, वह अच्छी तरह और अधिक शीघ्रता से अच्छा हो जायगा, यदि उसके ऊपर कोई बाहरी दबाव न डाला जाय। फोड़े को दबाना, मोड़ना, सिकोड़ना और फैलाना उचित नहीं। इससे शरीर के स्वस्थ स्नायु बिगड़ जाते हैं और फोड़े से रक्त निकलने लगता है। अगर फोड़े को आराम से रहने दिया जाय तो वह स्वतः सूख जायगा। इसीलिए अल्सर से आक्रान्त अंगों को पूर्ण विश्राम देना चाहिए। उपवास में पाचन-अंगों को जितना अधिक स्थानीय विश्राम मिल सकता है, उतना और किसी उपचार-प्रणाली में नहीं मिल सकता।

पेप्टिक अल्सर के अच्छा होने में गैस्ट्रिक एसिडिटी से रुकावट पड़ती है। हमेशा जलन की स्थिति में नये स्नायुओं का निर्माण भी बन्द रहता है। उपवास के कारण बड़ी तेजी से गैस्ट्रिक एसिडिटी दूर हो जाती है। केवल तीन दिनों के उपवास से गैस्ट्रिक रस का निकलना बन्द हो जाता है। उपवास में अल्सर से प्रभावित अंगों की सफाई भी बड़ी अच्छी तरह से हो जाती है। इस प्रकार रोग की जलन के मूल कारण बिलकुल दूर हो जाते हैं और नये स्नायुओं का निर्माण भी सम्भव हो जाता है।

१. भोजन और त्वचाओं के सम्पर्क-स्थान की जलन, २. भोजन को ग्रहण करने और इधर-उधर ले जानेवाले अंगों के तथा उदर की दीवारों के फैलने और सिकुड़ने आदि से सम्बन्धित जलन और ३. गैस्ट्रिक रसों के कारण जलन। यह तीनों प्रकार की

जलन उपवास से मिटती है। जलन के दूर होने पर रोग के उपचार की क्रिया सन्तोषजनक गति से आगे बढ़ती है।

अल्सर के रोगियों के स्वास्थ्य के बनने में उपवास से बहुत भारी लाभ होता है। उपवास से पाइलोरिस की परतें, जो अल्सर के कारण मोटी हो जाती हैं, स्वाभाविक रूप में आ जाती हैं। इसमें उपवास से घाव के तन्तुओं के बनने के पूर्व ही लाभ हो सकता है। रोगों की कुछ ऐसी अवस्थाएँ हैं, जिन्हें दूर नहीं किया जा सकता। अतः रोगों की अपरिवर्तनीय अवस्था के पूर्व ही विवेकपूर्ण पथ्य और स्वास्थ्यसम्बन्धी नियमों से रोग के कारणों को दूर करना चाहिए और तन्तुओं को पुनः स्वाभाविक अवस्था में लाना चाहिए।

अल्सर से मुक्त होकर स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए बहुत कुछ करना जरूरी रहता है। उपवास के बाद दुर्बल बनानेवाली समस्त बुरी आदतों एवं अतियों से सावधान रहना पड़ता है। पथ्य का सेवन संयम और नियम से करना आवश्यक है। अल्सर की किसी भी स्थिति में पुनः अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति सम्भव है, किन्तु कैन्सर के पश्चात् स्वास्थ्य में सुधार होना असम्भव है। •

२३. उपवास और सिर-दर्द

(माइग्रेन)

"मुझे मालूम है कि कोष्ठ-बद्धता के कारण मेरे सिर में दर्द होता है।" माइग्रेन से पीड़ित एक महिला ने मुझसे एक दिन कहा, "यदि मुझे कोष्ठ-बद्धता से मुक्ति मिल जाय, तो निश्चित है कि सिर-दर्द भी दूर हो जायगा।" वर्षों तक वे इस रोग से कष्ट भोग रही थीं। सैकड़ों चिकित्सकों से वे परामर्श लेती रहीं। सभी प्रकार की प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियों से रोग का उपचार करवाया, किन्तु स्थायी सफलता प्राप्त करने में वे असफल ही रहीं।

मैंने कहा, "आप उलटा समझ रही हैं, क्योंकि यदि आपका सिर-दर्द दूर हो जाय, तो कोष्ठ-बद्धता भी दूर हो सकती है।" "आप पागल मालूम होते हैं" उत्तर में उन्होंने कहा। "मैं नहीं, आप" उत्तर में मैंने कहा। "आपके कहने का मतलब क्या है?" उन्होंने पूछा। मैंने उन्हें समझाया कि सिर-दर्द और कोष्ठ-बद्धता दोनों अलग-अलग रोगों के लक्षण हैं। एक दूसरे का कारण नहीं हो सकता है। इन दोनों रोगों के दोनों कारणों से यदि आप छुटकारा पा सकें, तो उसी समय दोनों लक्षणों से आप मुक्त हो सकती हैं।

मैंने उन्हें समझाया कि रोग के मूल कारण को दूर किये बिना कष्टों से छुटकारा पाना सम्भव नहीं हो सकता और उन्हीं उपचारों पर भरोसा किया जा सकता है, जो रोग के मूल कारणों को दूर कर सकें।

एक छोटा-सा उपवास उन्होंने किया। उससे उनके शरीर के दूषित पदार्थ दूर हो गये। उपवास के बाद स्वास्थ्य के नियमों का भी उन्होंने पालन किया। परिणामस्वरूप उनका सिर-दर्द और कोष्ठबद्धता दोनों एक साथ ही खत्म हो गये।

माइग्रेन और हेमिक्रेमिया में अक्सर सिर-दर्द आधे भाग में होता है। साथ ही साथ रोगी का जी मिचलाता है और उल्टी भी होती है। आँखों और कानों में भी कुछ तकलीफ होती रहती है। इससे रोगी रोशनी और शोरगुल को बरदाश्त नहीं कर पाते हैं। अक्सर उनका मानसिक सन्तुलन भी नष्ट हो जाता है।

इसके साथ ही कार्यकारी अंगों की कुछ साधारण बीमारियों के जुट जाने से उनके कष्ट और अधिक बढ़ जाते हैं। वास्तव में ऐसे रोगियों का क्षणिक और तात्कालिक शांति प्रदान करने-वाली औषधियों का आदी हो जाना स्वाभाविक ही है।

वाल्टर सी० अलवरेज, एम० डी० का कथन है कि "ऐसे रोगियों को अस्पतालों में ले जाकर उनके ऊपर हर सम्भव वैज्ञानिक परीक्षण कराया जाय, तो भी माइग्रेन के कारण का पता चलना असम्भव है। रोग की उत्पत्ति का कारण अभी तक अज्ञात है।"

इस रोग के सम्बन्ध में डॉ० वेगर का निरीक्षण विशेष रूप से उल्लेखनीय है: "टॉक्सेमिया" (विजातीय विषैले द्रव्यों का शरीर के भीतर अधिक मात्रा में पाया जाना) ही माइग्रेन का एकमात्र कारण है। अतः रोगों को बढ़ानेवाली समस्त गलत प्रवृत्तियों और आदतों को रोकना आवश्यक है।

माइग्रेन की बीमारी पुरुषों में बहुत कम पायी जाती है, अधिकतर स्त्रियों में ही होती है। इससे पीड़ित स्त्रियों में दुर्बलता और विजातीय विषाक्त द्रव्यों की अधिकता रहती है। पाचन-शक्ति की कमजोरी, मासिक-धर्म में गड़बड़ी, बस्ति-प्रदेश में अस्वाभाविक रूप से रुधिर का अधिक संचय आदि से वे कष्ट भोगती हैं। इन्हींके कारण सिर-दर्द की स्थिति बराबर बनी रहती है। जिनके शरीर में पहले से माइग्रेन के लिए उपयुक्त क्षेत्र बना रहता है तथा अत्यधिक मात्रा में विषाक्त विजातीय द्रव्यों का संचय होता है, वहाँ पर पाचन-मार्ग से जहर के निकलने पर बड़ी शीघ्रता से माइग्रेन की उत्पत्ति हो जाती है।

इस सम्बन्ध में मैं एक विशेष उदाहरण दे रहा हूँ।

मैंने माइग्रेन से पीड़ित एक महिला से कहा कि "चार सप्ताह से लेकर छह सप्ताह तक उपवास करने से आप स्वस्थ हो सकती हैं, किन्तु आपका कोई उपचार नहीं कर सकता।" उसने उत्तर दिया, "जब अन्य उपचारों से मेरी कुछ भलाई न हो सकी, तो उपवास से क्या लाभ हो सकता है ?"

वास्तव में उपवास से उन्हें सिर-दर्द से स्थायी छुटकारा मिला और उनके विश्वास में दृढ़ता आ गयी।

कॉफी, इर्गोटामिन और ऐसी ही अन्य क्षणिक आराम पहुँचानेवाली औषधियों से ये रोग दूर नहीं किये जा सकते। इससे हानि ही होती है।

उपवास करने पर सिर-दर्द बिलकुल खत्म हो जाता है और दुबारा उभड़ता भी नहीं है। स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने से तथा नियम और संयम रखने से स्नायु-मण्डल से पीड़ित

और दुर्बल रोगी भी पूर्ण रूप से रोग-मुक्त होकर स्वस्थ बन जाते हैं। महिलाओं को छोटे-छोटे उपवास और नियमित जीवन-यापन से माइग्रेन से छुटकारा मिल जाता है। प्रायः १० दिन से लेकर ३ सप्ताह का उपवास पर्याप्त माना जा सकता है। उपवास दक्ष और कुशल निर्देशन में करना जरूरी है। उपवास की समाप्ति के बाद उचित आहार और नियम-संयम पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

२४. उच्चतर रक्तचाप

धमनियों के कड़ा होने का और हृदय-रोगों का एक कारण उच्चतर रक्तचाप बतलाया जाता है। उच्चतर रक्तचाप का मतलब है एक प्रकार के रक्त-भार की अधिकता, जिसे हाईपरटेनशन (अत्यधिक तनाव) कहा जाता है। धमनियों के सँकरी होने पर संकुचित रक्तवाहिनी नलिकाओं में रक्त-भार बढ़ जाता है। रक्त-भार बढ़ने के कारण हृदयसम्बन्धी कार्यों में रुकावट और बाधाएँ पैदा हो जाती हैं।

एक उदाहरण से विषय को ठीक से समझा जा सकता है। पानी के पाइप के भीतर पानी बह रहा है। पाइप में बिना किसी रुकावट के एक निश्चित दबाव में पानी बहता है। यदि पाइप में हम एक टोंटी बैठा दें, ताकि पानी के बहाव में कुछ रुकावट आ जाय तो इस रुकावट के कारण पानी का दबाव बढ़ जाता है। अगर टोंटी के मुख को छोटा कर दें तो पानी का दबाव और अधिक बढ़ जाता है। टोंटी का मुँह जितना छोटा होता है, उतना अधिक पीछे से पानी का दबाव बढ़ता है।

ठीक यही अवस्था रक्तवाहिनी नलियों (धमनियों) की है। इसे अत्यधिक तनाव कहते हैं। हृदय की सबसे बड़ी धमनी को एआर्टा कहते हैं। इसकी तुलना एक वृक्ष के तने से की जाती है। मुख्य धमनियों की शाखा यहीं से निकलती है। शाखाओं से प्रशाखाएँ निकलती रहती हैं और अन्त में वे इतनी छोटी होती हैं, जिन्हें धमनीरूपी टहनियाँ कह सकते हैं।

धमनियों की इन्हीं शाखाओं के तंग और संकुचित हो जाने पर रक्त का भार बढ़ने लगता है। हाइपरटेनशन की बीमारी केवल बूढ़ों को होनी चाहिए, किन्तु ऐसा न होकर अक्सर जवानों में और कभी-कभी छोटे बच्चों को भी हो जाती है। उच्चतर रक्तचाप के रोगियों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। इसीलिए इस रोग से विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है।

रोगियों के निजी जीवन में तथा सार्वजनिक क्षेत्र में बहुत पहले से नाना प्रकार की चिन्ताओं एवं लापरवाही के कारण स्नायुमण्डलों पर काफी तनाव पड़ते रहने के परिणामस्वरूप उच्चतर रक्तचाप प्रकट होता है।

अत्यधिक मैथुन और मानसिक विकार, दोनों इस रोग के प्रमुख कारण हैं। स्वास्थ्य के लिए ये दोनों बहुत हानिकारक हैं। अधिक भोजन, कॉफी, चाय, तम्बाकू, मद्यपान, अशांति आदि भी इस रोग के प्रमुख कारण बतलाये जाते हैं। नमक खाने से यह रोग बड़ी तेजी से भड़क उठता है, किन्तु अकेले नमक को ही दोषी बताना उचित नहीं है, क्योंकि रोगियों के स्वास्थ्य को बिगाड़नेवाले और भी बहुत से कारण हैं।

गुर्दों से, कफ-सम्बन्धी व थाईरायडस् की ग्रंथियों से और एडरेनल ग्रंथियों से जो तत्त्व बाहर निकलते हैं, वे उच्चतर रक्तचाप को बढ़ावा देते हैं। इनसे पता चलता है कि रोगी के शरीर में केवल स्नायु-सम्बन्धी जलन ही नहीं रहती है, बल्कि साधारण स्वास्थ्य भी गिरा हुआ पाया जाता है। इसीलिए रक्तचाप को घटाने का ही उपचार नहीं होना चाहिए, बल्कि साधारण स्वास्थ्य पर भी काफी खयाल रखना जरूरी है।

साधारण उपचार से नाड़ी-मण्डल को और कमजोर बनाया जाता है। शल्य-चिकित्सा के द्वारा थाईरायड-ग्लैंड और नाड़ी-

मण्डल के कुछ मुलायम हिस्सों को काटकर फेंक दिया जाता है। उन्हें ही रोग का कारण समझकर सर्जन लोग ऐसा करते हैं।

हाइपरटेनशन की बीमारी में उच्चतर रक्तचाप को घटाने के उद्देश्य से औषधियों का प्रयोग किया जाता है। इन औषधियों का प्रभाव नाड़ी-मण्डल, रक्त-संचार-प्रणाली और हृदय पर इतना खतरनाक होता है कि वे सभी बहुत कमजोर हो जाते हैं। इन उपचारों से केवल रक्तचाप घट जाता है, किन्तु वह भी औषधियों के सेवन-काल में ही। रोगों का कारण ज्यों का त्यों बना रहता है। अतः बीमारी भी बनी रहती है।

कभी-कभी रक्तचाप औषधियों से घटने की जगह बढ़ता ही जाता है। एक के बाद दूसरी औषधि की खोज बराबर जारी रहती है। उनका असर भी रोगी के स्वास्थ्य पर अच्छा व लाभकारी नहीं होता है।

अनेक कारणों के पीछे पड़ने से उपचार का परिणाम दुःखान्त हो जाता है। रोग के जितने प्रकार के कारण बतलाये जाते हैं, उतने सब प्रकारों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए अनेक औषधियों का व्यवहार किया जाता है। सोचते हैं कि इससे लाभ नहीं हुआ, तो कोई दूसरी दवा देनी चाहिए। रोगी को भोजन में नमक देना उचित नहीं होता। फिर भी उसे सिगरेट पीने से रोक नहीं पाते। कहने का आशय यह कि निश्चित और स्थायी लाभ के लिए रोग के एकआध कारण को रोकने से काम नहीं चलेगा, बल्कि उन कारणों से सम्बद्ध समस्त बातों पर ध्यान देना होगा। इसलिए उच्चतर रक्तचाप में हमें सबसे पहले रोगों के शरीर पर ध्यान रखना होगा और शरीर के हरएक अस्वाभाविक परिवर्तन को दूर करना होगा।

उपवास के बाद जिस द्रुत गति से रक्तचाप में और अन्य प्रणालियों की उत्तेजना और तनाव में कमी दिखलाई पड़ती है, विश्राम करने की महत्ता का पता चलता है। कुछ ही दिनों में रक्तचाप और तनाव में इतनी अधिक कमी देखकर रोगियों को आश्चर्य होता है। शरीर के विषाक्त विजातीय पदार्थों के दूर होने पर नाड़ी-मण्डल की पीड़ा कम हो जाती है। गुर्दे, एडरेनल, थाईरायड और कफ-सम्बन्धी ग्रंथियाँ अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाती हैं। परिणामस्वरूप रक्तचाप गिरकर अपने स्वाभाविक स्तर पर आ जाता है और कभी-कभी कुछ और नीचे गिर जाता है। भोजन करने के पश्चात् भी यह रक्तचाप अपने ठीक स्तर पर रहता है। जब तक रोगी उचित ढंग से पथ्य का सेवन करता रहेगा और स्वास्थ्य के नियमों पर चलता रहेगा, तब तक उसे रक्तचाप से दुबारा पीड़ित होने का कोई भय नहीं रहेगा।

उपवास से रक्तचाप में जो कमी लायी जाती है, वह सर्वथा स्वाभाविक है। उस पर कोई बाहरी दबाव नहीं रहता है। उपवास में शरीर के अंग स्वस्थ और सुरक्षित रहते हैं। यहाँ अंगों को काटकर विकृत और बेकार नहीं बनाया जाता है। कितना अच्छा होता, यदि अंगों को न काटकर रोगों की उत्पत्ति-सम्बन्धी कारणों को काट दिया जाता—जिससे रोगी को स्वाभाविक और स्थायी लाभ प्राप्त होता। इसके लिए तो हमें उपवास का सहारा लेकर स्वयं प्रयत्न करना होगा; जो धैर्य, संयम और त्याग से ही सम्भव हो सकता है।

२५. हृदय-रोग में उपवास से लाभ

पहले चिकित्सकों की ऐसी धारणा थी कि यदि किसी व्यक्ति को छह दिनों तक भोजन न मिले तो उसकी हृदय-गति वन्द होने से मृत्यु हो जायगी।

अब यह सिद्ध हो चुका है कि उपवास से हृदय कमजोर नहीं होता, बल्कि यह आश्चर्यपूर्ण अंग उपवास से और अधिक मजबूत बनता है।

हृदय को उपवास से तीन प्रकार से लाभ पहुँचता है :

१. उपवास से रक्त का संचार तेज होता है।

२. उपवास में हृदय को अधिक विश्राम मिलता है।

३. उपवास में सभी रोगियों को और खासकर हृदय के रोगियों को मादक-द्रव्यों से हर हालत में बचाया जाता है।

यदि हम आनजिना पेक्टोरिस को हृदय की बीमारी समझते हैं, जो बराबर तम्बाकू, कॉफी, चाय, हानिकर भोजन, कार्बोहाईड्रेट्स की अधिकता आदि के कारण पैदा होती है तो इस रोग में उपवास करने से हृदय की सभी कठिनाइयाँ जिस तेजी से दूर हो जाती हैं, यह देखकर आश्चर्य होता है।

जो व्यक्ति अधिक खाने के आदी हैं, अपनी शक्ति और सीमाओं पर ध्यान नहीं देते हैं, वे अक्सर आनजिना पेक्टोरिस से पीड़ित होते हैं। उनके जीवन के दोषपूर्ण तरीकों का अधिक भार बराबर हृदय पर पड़ता रहता है। इसलिए विश्राम करना बहुत आवश्यक है।

विगत पचीस वर्षों में पचास से अधिक औषधियाँ और तरह-तरह के सर्जिकल उपचार निकाले गये हैं, जो आनजिना-पेक्टोरिस से छुटकारा दिलाने का दावा करते हैं।

हम दावा नहीं करते हैं कि उपवास से आनजिना का उपचार किया जाता है, फिर भी इतना तो निश्चित है कि उपवास से हृदय का बोझ हलका हो जाता है, जिससे वह अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है।

उपवास में काम कम होने के कारण हृदय स्वयं दोषों को ठीक कर लेता है। तनाव और धड़कन दोनों में कमी हो जाती है। इस अंग को जो सच्चा विश्राम उपवास में प्राप्त होता है, वह किसी दूसरे उपाय से प्राप्त होना असम्भव है। इससे शरीर को स्वस्थ बनने का अवसर मिल जाता है। भोजन करते रहने की अवस्था में यह कार्य करना उसके लिए कठिन है।

हृदय-रोग के सैकड़ों मरीजों का अध्ययन व निरीक्षण करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है। उनसे छोटे-बड़े सभी प्रकार के उपवास करवाये गये। उपवास से बहुतों का हृदय अधिक स्वस्थ और शक्तिशाली हो गया। असाध्य अवस्था में पहुँचे हुए हृदय उपवास से बिलकुल स्वाभाविक बन गये। तेज धड़कनें मन्द हुईं; जो हृदय बिलकुल मन्द थे, उनकी गति को बढ़ाया गया। कमजोर दिलों को मजबूत बनाया गया। जो हृदय अनियमित थे, उन्हें नियमित किया गया। जिनकी गति अटपटी थी, उन्हें ठीक से संचालित किया गया। हृदय की क्रियाओं में काफी प्रगति की गयी। इस प्रकार हृदय के बन्द कपाट फिर खुल गये और नष्ट कपाट बिलकुल नये हो गये।

पाचन के रास्ते से जो भोज्य-पदार्थ हमें प्राप्त होता है और उससे जो लाभ हृदय को होता है, उससे कई गुना अधिक लाभ

उपवास में शरीर के संचित पोषक तत्त्वों से मिलता है। यह लाभ अधिक स्वाभाविक होता है। शरीर भी वास्तविक आराम पाकर बहुत से विकारों को दूर करता है और अंगों की कार्यकारी शक्तियों का बल बढ़ाता है।

उपवास में हृदय को दो मार्गों से विश्राम प्राप्त होता है :

१. हृदय की धड़कनों (पल्सेशन) की संख्या में आश्चर्यजनक कमी पायी जाती है। जिस हृदय में प्रति मिनट ८० धड़कनें होती थीं, उपवास से अब ६० या उससे भी कम धड़कनें होने लगती हैं। यदि कहीं हृदय में ८० से ज्यादा धड़कनें हों, तो उनकी गिरावट और भी अजीब ढंग से होती है। इस तरह प्रति मिनट २० धड़कनों की कमी होती है। अथवा एक घंटा में १२०० धड़कनों की या चौबीस घंटों में २८८०० धड़कनों की कमी हो जाती है। इससे पता चलता है कि हृदय के कार्य-भार में बहुत बड़ी कटौती हो जाती है।

कभी-कभी अत्यधिक परिश्रम और भावुकता के कारण हृदय की धड़कनों में स्वाभाविक उतार-चढ़ाव तो रहता ही है।

२. विश्राम की दूसरी अवस्था रक्तचाप में कमी या गिरावट की है। यदि भार या चाप १६० मी० मी० है, तो यह शीघ्रता से गिरकर १४०, १३० या ११५ मी० मी० पर पहुँच जायगा। पूरे उपवास-काल में यह चाप ११५ मी० मी० पर ही स्थिर रहेगा। मैंने एक हृदय-रोगी महिला को देखा, जिसका रक्तचाप बहुत अधिक था, जो २९५ मी० मी० तक पहुँच चुका था। उपवास के दो सप्ताह से भी कम समय में वह गिरकर ११५ मी० मी० पर स्थिर हो गया। इससे जाहिर होता है कि उपवास में हृदय को कम संघर्ष करना पड़ता है। कम शक्ति के व्यय से हृदय की

समस्त क्रियाएँ सुचारु रूप में होने लगती हैं। कम शक्ति व्यय और कम संख्या में हृदय की धड़कन होने से थके हुए और कमज़ोर दिल को पूरा आराम मिल जाता है। ऐसी परिस्थितियों में हृदय स्वयं अपनी मरम्मत कर लेता है और स्वतः अपनी शक्ति को बढ़ाता है। इसी तरह असाध्य हृदय को भी उपवास से पूर्ण स्वस्थ होते देखा गया है।

उपर्युक्त प्रकार के हृदय-सम्बन्धी विश्राम के साधनों को मैं प्रारम्भिक कहता हूँ। इसके अलावा विश्राम के और भी साधन हैं, जिन्हें माध्यमिक कहा जा सकता है। इनमें प्रथम विश्राम शारीरिक वजन में कमी के कारण हृदय को प्राप्त होता है। मोटे व्यक्तियों की रक्त-संचार-क्रियाओं में हृदय को अक्सर मोटापे के कारण अधिक परिश्रम करना पड़ता है। मांस के कम हो जाने पर रक्तचाप अक्सर बड़ी तेजी से गिर जाता है। इस तरह वजन की कमी हृदय के भार को कम कर देती है। शारीरिक वजन के हरएक किलो की कटौती में हृदय को आराम मिलता जाता है, क्योंकि उसे बाध्य होकर अपना स्वाभाविक कार्य करना पड़ता है।

दूसरा सिद्धान्त, जिस पर हमें विचार करना है, वह है डिकम्पेन्सेशन यानी अक्षतिपूरण की अवस्था। अक्षतिपूरण शरीर की उस अवस्था का नाम है, जिसमें रोगी की कमजोरी इतनी अधिक रहती है कि खर्च होनेवाले पोषक तत्त्वों की पूर्ति अंगों की स्वाभाविक क्रिया द्वारा नहीं हो पाती है। इस अवस्था में हृदय की धड़कनों की कमी साधारण रोगियों के उपवासों की अपेक्षा अधिक तेजी और शीघ्रता से नहीं हो पाती है।

अ-क्षतिपूरण (डी-कम्पेन्सेशन) की अवस्था में हृदय के द्वारा पर्याप्त रक्त-संचार नहीं हो पाता है। श्वास लेने में कठि-

नाई होती है। ओंठों और उँगलियों का रंग नीला हो जाता है। हृदय की क्रियाएँ तेज, किन्तु कमजोर होती हैं। नाड़ियाँ क्षीण होती हैं, पेशाब कम होता है और एडमा जलोदर के लक्षण दीखने लगते हैं।

यद्यपि बहुत पहले से ही हृदय में काफी दुर्बलता रहती है, इधर विजातीय द्रव्यों की अधिकता से हृदय की कठिनाइयाँ और अधिक बढ़ जाती हैं। हृदय का अधिक बोझ असह्य हो जाता है। इस भार के अन्दर हृदय की कमजोरी धीरे-धीरे और बढ़ती जाती है। जब हृदय कमजोर होता है तो जलोदर बढ़ जाता है, और जब जलोदर बढ़ जाता है तो हृदय का काम भी बढ़ जाता है। इस तरह एक ऐसा विष-चक्र शुरू हो जाता है, जिससे बचना कठिन हो जाता है।

एडमा कृत्रिम नमक (सोडियम क्लोराइड) के सेवन से उत्पन्न होता है। वह जहरीला है। इसलिए उसे खाना नहीं चाहिए। यह बड़ी कठिनाई से शरीर के बाहर निकल पाता है, इसीलिए रोगी के शरीर में यह जमा हो जाता है। यह त्वचाओं और छिद्रों के नीचे शरीर के स्नायुओं में पानी के साथ जमा रहता है और पानी में गलकर 'अमरम' बन जाता है। स्वस्थ व्यक्तियों में इसका पता आसानी से लग जाता है, किन्तु कमजोर व्यक्तियों में यह छिपा रहता है, जिसका असर हृदय और गुर्दों पर पड़ता है।

उपवास में रोगियों के शरीर से यह नमक बाहर निकाला जा सकता है, क्योंकि उपवास में पानी और नमक संचार-क्रियाओं में चला आता है और वहाँ से निकासी के मार्गों से बाहर निकल जाता है।

उपवास में प्रतिदिन ७८ ग्राम सोडियम क्लोराइड (विषैला नमक) ऐसे रोगियों के पेशाब के साथ बाहर निकलता है। बायो केमिकल परीक्षण से पता चला है कि उपवास में कम मात्रा में पेशाब करनेवाले रोगियों में भी प्रचुर मात्रा में सोडियम क्लोराइड बाहर निकलता है।

इस तरह उपवास में विषैला नमक बाहर निकल जाने पर एडामेट्स तन्तुओं की पूरी सफाई हो जाती है। परिणाम-स्वरूप छिपे हुए एडमा और जलोदर दोनों शीघ्रता से दूर हो जाते हैं।

हृदय की अत्यधिक कमजोरी की हालत में गुर्दों की कम-जोरी से रक्त का प्रवाह रुक जाता है और उसका असर गुर्दों के ऊपर पड़ता है। गुर्दों की कार्यवाहियाँ भी शिथिल हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में भी उपवास करने से कूड़े के बाहर होने से गुर्दों में ताकत आ जाती है और उनके कार्यों में काफी सुधार हो जाता है। यहाँ भी रोगी को पानी देने के विषय में दो मत हैं। कुछ लोगों का मत है कि अधिक पानी पिलाने से गुर्दे अच्छी तरह कार्य करते हैं। मेरे मत से उपवास में रोगी को कम पानी देना उचित है और इससे एडीमेट्स के कूड़े बड़ी शीघ्रता से बाहर निकलते हैं।

इस तरह रोगी के शरीर की पूरी सफाई के बाद एडमा अपने स्वाभाविक रूप में आ जाता है। हृदय का भार हलका हो जाता है। उपवास का अनुकूल असर नाड़ी-केन्द्रों पर पड़ता है और यहीं से रक्त-संचार-क्रियाओं पर नियंत्रण रखा जाता है। अतः हृदय और धमनियाँ दोनों स्वस्थ और शक्तिशाली बन जाती हैं। कहने का मतलब यह है कि सम्पूर्ण रक्त-संचार-प्रणाली

उपवास से सुधर जाती है और भोजन के बाद भी उसकी क्रियाओं में कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

एडामेट्स वर्ग के एक रोगी की प्रगति का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है। इससे ज्ञात होगा कि हृदय के रोगी जब उपवास करते हैं, तब उन्हें कैसी सफलता प्राप्त होती है।

उक्त रोगी की आयु २४ वर्ष की थी। उसे मीट्रल स्टेनोसिस् की भी शिकायत थी। उसकी अवस्था काफी चिन्ताजनक थी, क्योंकि हृदय के दाहिनी ओर की समस्त क्रियाएँ बन्द हो चुकी थीं। हृदय का व्यास सभी ओर काफी बढ़ गया था। यकृत बढ़कर कूल्हे की हड्डी की चोटी तक पहुँच गया था। फुफ्फुस के आवरणों, एडमा और हृदय के निचले भागों में तरल पदार्थों का बहाव थोड़ा-थोड़ा जारी रहता था। रोगी को श्वास लेने में भी कुछ तकलीफ थी। यहाँ प्रवेश के पूर्व रोगी का इलाज भी दवाइयों से किया गया था।

उसे सात दिन का उपवास करना पड़ा। उपवास के तीसरे दिन रोगी की अवस्था में सुधार के कुछ लक्षण साफ दिखलाई पड़े। यकृत दो अंगुल प्रतिदिन के हिसाब से सिकुड़ने लगा। एडमा से जो तरल पदार्थ बाहर निकलता था, उसका निकलना बन्द हो गया। सातवें दिन पसलियों के नीचे यकृत केवल तीन अंगुलभर चौड़ा रह गया। एडमा का बढ़ा भाग भी लुप्त हो गया।

फुफ्फुस के भीतर द्रव्यों के बहाव में काफी सुधार हुआ। पेशाब की मात्रा का बढ़ना भी कम उल्लेखनीय नहीं है। पहले मात्र २५० सी० सी० पेशाब होती थी, किन्तु उपवास के पाँचवें दिन पेशाब की मात्रा बढ़कर ३७०० सी० सी० तक पहुँच गयी

और अन्त में २००० सी० सी० पर स्थिर रही। मूत्र-वृद्धि एडमा के दूर होने का परिणाम है।

उपवास से प्राप्त ये सभी लाभ साधारण नहीं हैं।

बुद्धिमान् मनुष्यों को समय के पहले उपवास से लाभ उठाना चाहिए। उपवास के इन सुलभ लाभों के बावजूद रोग की जटिल अवस्थाओं में पूर्ण रोग-मुक्ति की आशा उपवास से नहीं करनी चाहिए। अतः उपवास रोगों के पूर्ण रूप से निर्मूल किये जाने की अवस्था से ही प्रारम्भ करें। हृदय-रोगियों को उपवास सर्वदा योग्य और कुशल निर्देशन और निरीक्षण में करना चाहिए। हृदय-रोगी अपनी इच्छा से कभी भी उपवास करने का प्रयत्न न करें।

२६. बड़ी आँत की सूजन

वृहद्न्त्र (बड़ी आँत) की सूजन को कोलिटिस कहते हैं।

कोलिटिस कोलन (वृहद्न्त्र या बड़ी आँत) को समझने के लिए शरीर-रचना को संक्षेप में समझ लेना जरूरी है। मानव-रचना शास्त्र के अनुसार मनुष्यों की वड़ी आँत की उपमा एक नाली से दी जाती है। बड़ी आँत के तीन विभाग किये गये हैं : (१) ऊपर जानेवाली आँत, (२) तिरछी आँत, (३) नीचे की ओर जानेवाली आँत। ऊपरी आँत एक थैली (सिकुम) से निकलती है, जहाँ पर छोटी आँत खत्म होती है। कृमि के आकार की आँत सिकुम से संलग्न रहती है। ठीक अपेण्डिक्स के ऊपर ९० अंश के कोण पर सिकुम छोटी आँत से जुड़ा होता है।

सिकुम का ऊपरी सिरा ऊपरी बड़ी आँत के पहले भाग में मिल जाता है। यकृत के निकट दाहिने तरफ यह ऊपर की ओर जाता है। वहाँ एक कोण वनता है, जिसे 'हेपटिक फ्लेक्सर' कहते हैं। तिरछी आँत वहीं से प्रारम्भ होती है।

तिरछी आँत ठीक पेट के नीचे पेड़ू के चारों ओर कुछ वक्र आकार में रहती है। बायीं ओर एक दूसरा कोण वनता है, जिसे 'स्प्लेनिक फ्लेक्सर' कहते हैं। प्लीहा के नीचे नीची आँत बनती है, जो 'सिगमायड' के मोड़ में मिलती है। वक्राकार नीचे की ओर तिरछी होकर वहीं अंग्रेजी के 'S' अक्षर के आकार की हो जाती है। छोटी आँत का सिरा और सिकुम के बीच 'स्फिंक्टर' मांसपेशी से बना हुआ एक कपाट लगा रहता है, जिसे 'इलियो सेसल

वाल्व' कहते हैं। 'रेक्टम' (बड़ी आँत का अन्तिम छोर) जो गुदा से मिला रहता है, के सिरे पर वैसा ही एक दूसरा कपाट होता है, जो 'रेक्टम' को बन्द रखता है।

वृहदन्त्र (वड़ी आँत) पाचन के बाद बचे हुए मल को सिकुम से ऊपर ले जाकर तिरछी आँत के चारों ओर होकर नीचे की ओर 'सिगमायड' के बीच से 'रेक्टम' तक ले जाकर गुदा मार्ग से बाहर निकाल देता है। छोटी आँत में पाचन-क्रिया पूरी हो ज़ाती है। वहीं पर भोजन के पचाये हुए भाग जज्ब हो जाते हैं। बड़ी आँत से पानी का कुछ भाग चूसा जाता है। छोटी आँत खास तौर पर भोजन को ग्रहण और जज्ब करने के लिए होती है। वड़ी आँत के दूषित पदार्थ इसमें जज्ब नहीं होते हैं, ऐसा प्रतीत होता है।

मनुष्य-शरीर में मुख से गुदा-पर्यन्त भोजन ले जानेवाली और उसे पचानेवाली नली की तरह कोलन (बड़ी आँत) भी पतली चमड़े की परतों से ढँकी रहती है, जिसे 'म्युकस मेम्ब्रेन' कहा जाता है। कोलन की जलन और सूजन को 'कोलिटिस' या 'कोलोनाइटिस' कहा जाता है। कुछ विशेषज्ञों ने इसे 'सभ्य' लोगों की बीमारी बतलाया है; क्योंकि 'असभ्य' जातियों में यह बीमारी बहुत ही कम पायी जाती है। कोलिटिस का शायद सबसे अधिक कष्ट देनेवाला लक्षण "कोष्ठ-बद्धता" (कान्स्टीपेशन) है और यह कभी-कभी संग्रहणी या अतिसार (डायरिया) में भी बदल जाता है। अगर कोलिटिस नया हो तो वह डायरिया के रूप में होता है, जिसमें पानी की तरह पतला मल बाहर निकलता है। इस अध्याय में जितने प्रकार के कोलिटिस का वर्णन किया जायगा, वे सभी 'म्युकस कोलिटिस' के अन्तर्गत आते हैं।

अगर ध्यान दिया जाय तो पता चलता है कि कोलिटिस की बीमारी में बड़ी आँत सिकुड़ जाती है। कुछ ऐंठन और मरोड़ के भी लक्षण पाये जाते हैं। तिरछी आँत भी नीचे की ओर फूल आती है। कोलिटिस के न होने पर बड़ी आँत में सूजन हो सकती है और बिना सूजन के भी कोलिटिस की उत्पत्ति हो सकती है। इन दोनों अवस्थाओं में अक्सर 'स्पैसटिक कोलिटिस' निश्चित पाया जाता है।

स्पैसटिक या कान्स्टीपेशन को 'म्युकस कोलिटिस' का कारण बतलाना या 'कोलिटिस' को 'स्पेसटिक कान्स्टीपेशन' का कारण समझना गलत और विवेकशून्य विचार है।

पुरानी 'कोलिटिस' में बड़ी आँत के भिन्न-भिन्न भागों में सूजन के लक्षण दिखाई पड़ते हैं और जिस स्थान पर अधिक सूजन रहती है, उसीके नाम के साथ बीमारी का नाम रखते हैं, जैसे 'सिगमोयडिटिस्ट', 'प्रोक्टीटिस' आदि।

बहुत दिनों तक इस बीमारी की अवस्था का कुछ पता नहीं चलता है। साधारण लोग उसे पेड़ू-सम्बन्धी तकलीफ समझते हैं। उसे कोष्ठ-बद्धता और गैस के कारण पैदा हुई मानते हैं। जब विष्ठा में 'म्यूकस' दिखलाई पड़ता है, तब रोग काफी बढ़ चुका होता है। जब विष्ठा में 'म्यूकस' की अवस्था कड़ी दिखलाई दे, तब कोलिटिस के लक्षण स्पष्ट प्रकट हो जाते हैं। साथ ही साथ मल के भीतर लस्सीदार छोटे-छोटे टुकड़े और खून की लाल रेखाएँ भी मौजूद रहती हैं। इन सभी लक्षणों को देखकर समझना चाहिए कि रोगी को कोलिटिस की बीमारी है।

एक ही बीमारी को अलग-अलग स्थान पर होने के कारण अलग-अलग नाम दे दिये जाते हैं। रोग एक ही रहता है,

किन्तु उसके नाम अलग-अलग हो जाते हैं। 'सिगमायड' और 'सेक्टस' को अलग करनेवाली कोई रेखा नहीं होती है। एक ही सूजन, जो 'सिगमायड' में होती है, उसे 'सिगमायटिस' कहते हैं, और वही सूजन यदि 'रेक्टम' में होती है तो उसे 'प्रोक्टीटिस' कहते हैं।

कोलिटिस का सही निदान करने में काफी दक्षता की जरूरत है। रोगी को ठीक कहाँ पर सूजन है और वह किस प्रकार के 'कोलिटिस' से कष्ट पा रहा है, इसका सही पता लगा लेना कोई आसान काम नहीं है। अगर चिकित्सक का निदान ठीक भी हो तो उसका मतलब यह नहीं कि वह रोग के सही कारण से भी परिचित है। निदान करने की बड़ी-से-बड़ी तकनीक में भी देखा गया है कि रोगी का सही उपचार नहीं होता है, केवल साधारण औषधियों द्वारा कुछ समय के लिए उसकी तकलीफों को घटा दिया जाता है। लेकिन न रोग दूर होता है और न रोगी को स्थायी आराम मिलता है।

दरअसल हमारा उद्देश्य रोग के वास्तविक कारण को पकड़ने का ही होना चाहिए, न कि बड़ी आँत के किस भाग में मरोड़ और जलन हो रही है, इसका पता लगाना।

इस रोग से पीड़ित व्यक्ति बहुत ही कम प्रसन्न और हँसमुख दिखलाई पड़ते हैं। हर प्रकार की बीमारी में चिन्ता, कमजोरी और दुःख ही स्वभावतः देखने में आते हैं। शारीरिक कष्टों में मन और भावना से स्वस्थ बना रहना शायद ही कभी सम्भव होता है। बहुत बड़े साहसी, वीतरागी ही क्यों न हों, किन्तु दुःखों के सम्मुख उन्हें भी कुछ झुकना ही पड़ता है। कोलिटिस के रोगी भी दुर्बल और चिन्तित हो जाते हैं। पुरानी कोलिटिस के कारण बहुत-सी मानसिक और स्नायविक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं।

कम-से-कम कोलिटिस की ९५ फीसदी पुरानी बीमारियों में कोष्ठ-बद्धता का बहुत ही ज्यादा प्रभाव रहता है। रोगियों में कोष्ठ-बद्धता बहुत वर्षों से जड़ जमाये रहती है। इसी बीच रोगी रेचक (मल को मुलायम करनेवाली) औषधियों, पेट साफ करनेवाली औषधियों (जुलाब), टीस, तेल, एनिमा, कोलन की धुलाई इत्यादि के सहारे कोष्ठ-बद्धता से छुटकारा पाने का प्रयत्न करता रहता है। वह कभी विचार नहीं करता कि कोष्ठ-बद्धता रोग नहीं है, बल्कि वह 'कोलिटिस' रोग का मात्र एक लक्षण है। इन उपायों से रोगी को कुछ अस्थायी आराम मिलता है, किन्तु अन्त में इनसे रोगी की अवस्था और खराब हो जाती है। कोलिटिस के समस्त रोगियों को बदहजमी (अपच-अजीर्ण) की शिकायत रहती है। गैस और आँतों में बादल की तरह गड़गड़ाहट होती रहती है, जिससे कभी-कभी कम-अधिक पेट में पीड़ा रहती है। पेट भरा हुआ और भारी मालूम होता है। काम-काज करने में मन नहीं लगता। कभी-कभी थोड़ा, किन्तु बराबर सिर-दर्द रहता है और कभी-कभी रुक-रुककर बड़े जोरों का सिर-दर्द होता है। इस रोग के बहुत-से रोगियों की गरदन की मांसपेशियों में अक्सर दर्द और गरदन के जोड़ के ठीक नीचे तनाव और कड़ापन आ जाता है और कभी-कभी वहाँ दर्द भी होता रहता है।

अक्सर कमजोरी और अल्प-रक्तवाले व्यक्ति ही इस रोग के शिकार होते हैं, जिन्हें एनेमिक और डाइसेमिक बतलाया जाता है। वे दुबले-पतले और पोषक तत्त्वों के अभाव में अधिक शक्तिहीन दिखाई पड़ते हैं। कोलिटिस की बीमारी हमेशा ऐसे लोगों में ही पायी जाती है, ऐसा कोई नियम नहीं है। जीभ

गन्दी हो जाती है, भोजन में कोई स्वाद नहीं आता और श्वास से दुर्गन्ध आती है।

शरीर में काफी थकान मालूम होती है। रोगी आलसी और हताश हो जाता है। कोलन से अधिक संचित मल बाहर निकलने पर साथ ही रोगी को उबकाई (उल्टी) आने लगती है।

कोलिटिस के अधिकांश रोगी दवाइयों के आदी हो जाते हैं। रोग से सम्बद्ध जितनी औषधियों का विज्ञापन निकलता रहता है, उन सभी दवाइयों का वे लोग इस्तेमाल करते हैं। सभी प्रकार के 'लैक्सेटिव कथराटिक्स' (रेचक औषधि), टॉनिक और पाचक आदि का सेवन करते हैं। वे एक चिकित्सक की दवा खाकर लाभान्वित न होने पर दूसरे चिकित्सक से दवा लेते हैं। अलग-अलग डॉक्टर रोगों के अलग-अलग लक्षण बतलाते हैं, जिसके कारण रोगी की भावनाएँ उलझ जाती हैं। एनिमा, कासकेड्स और धुलाई तथा भोजन के तरह-तरह के तरीके तथा मानसिक रोगों के विशेषज्ञों से सम्पर्क आदि के बावजूद उनके ये सभी प्रयत्न प्रायः निष्फल रहते हैं। कुछ रोगी एनाटोमी, फीजियालॉजी तथा आहार-शास्त्र आदि का अध्ययन करते हैं, किन्तु उनसे भी कुछ लाभ नहीं उठा पाते।

कभी-कभी कोलिटिस के रोगियों में मानसिक बीमारियाँ भी पैदा होती हैं, जिन्हें रोकने की आवश्यकता है।

इस रोग से छुटकारा प्राप्त करने के लिए पर्याप्त विश्राम की आवश्यकता पड़ती है। विश्राम का समय काफी लम्बा हो। सगे-सम्बन्धियों से दूर किसी स्वास्थ्यप्रद वातावरण में रहना अति उत्तम माना जाता है। बिस्तर पर लेटकर शरीर को यथेष्ट आराम देना चाहिए। शरीर-सम्बन्धी समस्त कार्यों को रोककर पूर्ण

विश्राम लेना चाहिए। दिमाग को आराम पहुँचाने के लिए आंतरिक शांति रखनी चाहिए। चिन्ता, भय, घबराहट एवं दुर्बल बनानेवाली भावनाओं का त्याग करना चाहिए। उत्तेजनाओं से बचकर रहना चाहिए। शारीरिक विश्राम उपवास में मिल सकता है। उपवास में सभी प्रकार का भोजन बन्द कर देना चाहिए। फिर पेट और आँत के समस्त मरोड़ और दर्द दूर हो जायेंगे।

हलके भोजन की जगह उपवास करना अधिक लाभप्रद है। उपवास से चय-अपचय की क्रिया तेज हो जाती है। अर्थात् शरीर से विषाक्त पदार्थ बाहर निकल जाते हैं और शरीर के भीतर कोषाएँ और स्नायु-मण्डल मजबूत बनते हैं। नयी शक्ति से शरीर की थकान दूर हो जाती है। इससे शरीर की रक्त-सम्बन्धी स्वाभाविक रासायनिक क्रिया में उचित परिवर्तन होने लगता है। यह कार्य किसी मनुष्य के वश का नहीं है। इसे हमारा शरीर ही पूरा कर सकता है।

औषधि देकर आँतों में जलन पैदा करना रोगी के कष्टों को बढ़ाना ही है। इसके कारण दिन-ब-दिन रोगियों की अवस्था बिगड़ती जाती है। मेडिकल एनिमा से जलन अधिक होती है। इसके साथ साबुन के टुकड़े और दूसरे पदार्थ जो मिलाये जाते हैं, वे सभी हानिकारक ही हैं।

यह बात समझ लेना आवश्यक है कि कोलिटिस भी नाक, गला, गर्भाशय, मूत्राशय आदि श्लेष्मावाले अंगों की जलन और सूजन की तरह एक है। अतः जिस प्रकार श्लेष्मा-सम्बन्धी रोगों से मुक्ति मिल सकती है, ठीक उसी प्रकार कोलिटिस से भी छुटकारा सम्भव है।

इस रोग की सर्वसाधारण अवस्था डायरिया है, जिसे थोड़े दिनों की साधारण कोलिटिस कहा जाता है। औसत तन्दुरुस्तीवाले रोगियों के लिए यह खतरनाक नहीं है। यह दो-चार दिन से ज्यादा नहीं रहती है। बहुत से लोग आँत का ख्याल न रखकर केवल दवाइयों से डायरिया को दबाने का प्रयत्न करते हैं। अनुचित आहार से आँतों की जलन को और बढ़ा देते हैं। खास करके बच्चों के विषय में ऐसी असावधानी देखने में आती है। बार-बार ऐसा करने से कोलिटिस पुरानी हो जाती है।

ओमीवीक डीसेन्ट्री (आमातिसार, रक्तातिसार, आँव) कोलिटिस की ही एक जाति है। आँतों की प्रारम्भिक साधारण सूजन को दवाइयों के द्वारा स्थायी बीमारी बना देते हैं, तो वह नाना रूप ले लेती है। यदि रोगियों को कोई दवा व भोजन न दिया जाय तो एक सप्ताह या दस दिनों के अन्दर ही यह बीमारी बिलकुल दूर हो जाती है।

रोग के असली कारण जानने के बाद रोग बहुत जल्दी ही मिटाया जा सकता है। रोगी शीघ्र ही स्वस्थ बन सकता है। किन्तु यदि प्रचलित औषधियों से इलाज किया जाय तो रोग वर्षों तक टिका रह जाता है और कभी-कभी रोगी की मृत्यु के साथ ही रोग का अन्त होता है। कोपाओं के जन्तुओं को मारने के लिए औषधियों का व्यवहार और परजीवी कीड़ों को मारने के लिए एनिमा का व्यवहार करने से कोलिटिस के नासूर और प्रोक्टीटिस की तैयारी हो जाती है। रोग पर नियंत्रण प्राप्त करने के पहले कीड़ों के मारने की लड़ाई में अक्सर रोगी की मृत्यु तक हो जाती है।

उपवास में कोपाओं से युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। शरीर के विषैले पदार्थों के बाहर होने से डायरिया

स्वयं खत्म हो जाता है। उपवास में कुछ दिनों के बाद ही कोषाओं के सभी उत्पात रुक जाते हैं।

'म्युकस कोलिटिस' के बढ़ जाने से 'अल्सरेटिव कोलिटिस' की उत्पत्ति होती है। पुरानी सूजन के कारण आँतों में कड़ापन और नासूर हो जाता है। कभी-कभी नयी कोलिटिस से भी भयंकर नासूर हो सकता है। 'म्युकस कोलिटिस' के सम्बन्ध में जो सुझाव दिये गये हैं, उनका यदि पालन ठीक से किया जाय तो 'अल्सरेटिव कोलिटिस' की उत्पत्ति नहीं होगी।

रोगी को बुखार शुरू हो जाता है। डायरिया में खून व पीव मल के साथ बाहर निकलते हैं। परिणाम-स्वरूप बड़ी आँत संकुचित होने लगती है और विकृत हो जाती है। नासूर-युक्त कोलिटिस में कोष्ठ-बद्धता अक्सर डायरिया में बदल जाती है।

कोलिटिस साधारण जलन से शुरू होती है। फिर वह सूजन नासूर, कड़ापन और अन्त में कैन्सर में बदल जाती है। यदि प्रारम्भ में अर्थात् जलन पैदा होने पर ठीक से उपचार किया जाय, तो रोगों का नष्ट होना कोई असम्भव बात नहीं है।

जब कोलिटिस का नासूर दिखाई दे, तो समझ लेना चाहिए कि अब कैन्सर भी दूर नहीं है—यद्यपि दोनों बीमारियों में काफी अन्तर है। किन्तु नासूर में अधिक खाने व गलत ढंग से भोजन करने से, कोलन व रेक्टम को हमेशा भरा रखने से आँतों का कैन्सर सर्वथा स्वाभाविक है।

पुरानी सूजन का उपचार सम्भव है, किन्तु विकृत नासूर का नहीं। आँतों की सूजन के विषय में भी यही बात लागू होती है। बड़ी आँत में जलन, सूजन, अल्सर, विकृति और कैन्सर में यदि

डॉक्टरी दवा की गयी, तो रोगी पागल और अशक्त हो जायगा, जो कि कैन्सर की तरह ही दुखदायी है।

रेक्टम और बड़ी आँत के कैन्सर का आपरेशन करने से एक कृत्रिम गुदा बन जाता है, जो कैन्सर से भी बढ़ जाता है। कैन्सर से आक्रान्त रेक्टम और कोलन से दूषित पदार्थ इसी रास्ते से बाहर किये जाते हैं। इसके द्वारा रोगी का जीवन इतना घिनौना और दुःखी बन जाता है, जिसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती है।

अलवर्ज महोदय कहते हैं कि "कभी-कभी जब डॉक्टरी दवाओं से रोगी को कुछ लाभ नहीं पहुँचता है, तब शल्य-क्रिया द्वारा अन्तिम प्रयास के तौर पर बड़ी आँत को भी वे लोग काटकर उड़ा सकते हैं। औषधियों से रोग को नहीं, बल्कि रोग के लक्षणों को दबाने से रोगी को भले ही कुछ साधारण आराम मिलता हो, परन्तु यह आराम बिलकुल अस्थायी रहता है। दवाओं के द्वारा रोगी को नींद में ले आते हैं, ताकि कुछ देर तक उसे कष्ट का भान न हो। पेट व आँत को साफ करने के लिए रोगी को कोपामिन या कोडाइन देते हैं। खून की कमी की पूर्ति लौह-तत्त्व के द्वारा करते हैं। कहते हैं कि रोगी को बिस्तर पर लेटा देना चाहिए। मनचाहा भोजन देना चाहिए जो कि खूब स्वादिष्ट हो, ताकि रोगी उसे भरपेट खा सके और थाली में कुछ भी बाकी न छोड़े। शरीर की ताकत के लिए अधिक भोजन और विटामिन जरूरी है।"

यह सारी पुरानी गलत धारणाएँ जन-साधारण में खूब व्याप्त हैं। आधुनिक चिकित्सकगण भी इसके अपवाद नहीं हैं। भोजन करने की अवस्था में रोगियों की आँतों की सफाई सम्भव

नहीं हो पाती है। रोगियों को स्वस्थ बनाने में आँतें असफल हो जाती हैं। परिणामस्वरूप बीमारी की प्रक्रियाएँ शरीर के अन्दर जीवित रहती हैं। यदि डायरिया होते ही उपवास किया जाय तो शायद नासूर पैदा होने की नौबत ही नहीं आती और रोगी को इतनी परेशानी भी नहीं उठानी पड़ती।

जो रोगी इन आदेशों का ठीक से पालन करेंगे, उन्हें कभी भी 'म्युकस कोलिटिस' और 'अल्सरेटिव कोलिटिस' नहीं होगी।

२७. चर्म-रोग—खाज, खुजली, उकवत, लाल चकत्ते इत्यादि

वह बीस वर्ष का एक युवक विद्यार्थी था। उसकी सभी आशाओं और महत्त्वाकांक्षाओं पर पानी फिर गया था। वह परिस्थितियों के चंगुल से इस प्रकार ग्रसित था कि कहीं भी छुटकारा प्राप्त करने का मार्ग ढूँढ़ नहीं पाता था। उसके सारे शरीर में—हाथ-पैर में, गर्दन और मुख के ऊपर बड़े-बड़े फफोले फूट निकले थे। पलकों के ऊपरी भाग, अँगुलियों और होंठों में लाल चकत्ते फैले हुए थे। इस चर्मरोग को वैज्ञानिकों ने 'सोरियासिस' नाम दिया है। कई वर्षों से वह इस रोग से पीड़ित था। प्रचलित औषधियों से उसे इस रोग में कोई लाभ नहीं हुआ। एक्सरे, सालवेज मलहम, कोर्टीजन और अन्य औषधियों से केवल थोड़े समय के लिए कुछ आराम मिलता था। चिकित्सक कहते थे कि हम लोग हर सम्भव प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु इस रोग से सर्वदा के लिए मुक्ति देने की कोई उपचार-प्रणाली हम लोगों के पास नहीं है।

साल पर साल विद्यार्थी के लाल चकत्तों का इलाज चर्म-रोग-विशेषज्ञों (डरमेटालोजिस्टस) द्वारा चलता रहा, किन्तु उनके सारे प्रयत्न विफल हो गये। रोगी के शरीर की जलन और विकृति बढ़ती गयी।

अन्त में सब ओर से निराश होने पर एक दिन उसकी प्राकृतिक चिकित्सक से मुलाकात हुई, जिसने उपवास की विशेषताओं से

रोगी को परिचित कराया। रोगी सहर्ष उक्त संस्था में प्रविष्ट हुआ, जहाँ रोगियों के उपवास और आहार पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

उक्त विद्यार्थी को उपवास करना पड़ा। प्रतिदिन उसे धूप-स्नान भी करना पड़ता था। इतने से ही उसका चर्म-रोग बड़ी तेज़ी से घटने लगा। विकृत चमड़े के स्थान पर सुन्दर और स्वस्थ नयी परतें बिछ रही थीं। एक सप्ताह के उपवास में चमड़ी के दाग खत्म हो गये। मुख-मण्डल पर आभा चमकने लगी, त्वचा कोमल, स्वच्छ और सुन्दर दीखने लगी। चर्म-रोग की जलन भी दूर हो गयी। इस तरह उस निराश युवक ने प्रसन्न होकर पुनः एक नया जीवन प्राप्त किया।

मनुष्य की त्वचा (चर्म) उसके शरीर का सबसे विस्तृत और महत्त्वपूर्ण अंग है। इसका सम्बन्ध हमारे यकृत और मस्तिष्क से भी रहता है। यह एक जटिल अंग है, जिसके भीतर नाड़ियाँ, रक्तवाहिनी नलिकाएँ, ग्रंथियाँ, कोषाएँ एवं चर्बी आदि सब इस प्रकार छिपी रहती हैं, जैसे किसी लिफाफे के अन्दर कोई वस्तु रखी जाती है। ये शरीर को ढँकनेवाली वाटरप्रूफ व गैसप्रूफ (पानी व गैस से बचानेवाली) परतें हैं, जो कि भीतर के मुलायम अंगों की रक्षा करती हैं तथा हरएक बाहरी वातावरण के प्रभाव को रोकती हैं। इसे शरीर का रेडियेटर (प्रकाश फैलानेवाला) और एअर कण्डीशनर (शीत-ताप को नियंत्रित करनेवाला) कहा जाता है। पसीने के द्वारा शरीर के तापमान का नियंत्रण होता है और शरीर में पानी के संतुलन को बनाये रखने में इनसे सहायता प्राप्त होती है।

कुछ हद तक शरीर का कूड़ा भी त्वचाओं से बाहर निकलता रहता है। त्वचा सूर्य की प्रखर किरणों से शरीर की रक्षा करती

है। सूर्य की गरमी से शरीर के भीतर विटामिन डी का निर्माण त्वचा के द्वारा होता है। चर्बी और रक्त त्वचा में संचित होता है। शरीर के भीतर इसीसे स्वाभाविक उत्तेजना उत्पन्न होती है। गरमी, ठंढी और दबाव का अनुभव इसीसे हमें प्राप्त होता है। स्पर्श-सुख का अनुभव भी हमें त्वचा से प्राप्त होता है।

चर्म-रोगों से शरीर में काफी जलन पैदा होती है। चमड़ी की जलन को डर्माडिटिस (त्वचासम्बन्धी बीमारी) कहते हैं।

त्वचा को रक्त से खुराक प्राप्त होती है। बाहरी किसी पदार्थ से उसे कोई लाभ नहीं मिलता। त्वचा हमारे शरीर की खोल है। अतः उसे बहुत से बाहरी पदार्थों से सम्पर्क रखना पड़ता है और कुछ वस्तुओं का प्रभाव त्वचा पर बहुत बुरा पड़ता है। इनसे चमड़ी को कई प्रकार से नुकसान पहुँचता है। सौभाग्य की बात है कि शरीर में रोगों से लड़ने की नैसर्गिक शक्ति विद्यमान है और वह स्वयं को स्वस्थ रख सकती है। फिर भी कभी-कभी शरीर की कुछ ऐसी क्षति होती है, जिसकी स्थायी छाप शरीर पर पड़ जाती है। इसीलिए हमें बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है।

चर्म-रोगों की उत्पत्ति का कारण मुख्य रूप से शरीर के भीतर विषैले पदार्थों का अधिक जमा होना है। कुछ चर्म-रोगों की उत्पत्ति संखिया आदि विषैले पदार्थ, पारा, आयोडिन, पोटाशियम, टीका, सेरम वगैरह दवाइयों के कारण होती है। इन्हींके कारण चमड़ी में जलन पायी जाती है।

चर्मरोग-विशेषज्ञ रोगियों से चर्म-रोगों में साबुन से स्नान करवाते हैं, जिसके कारण रोगियों की तकलीफ और बढ़ जाती है। चर्म-रोगों में सफाई रखना बहुत जरूरी है। साधारण गरम

पानी से स्नान करना बड़ा उपयोगी होता है। ठीक से स्नान करने से बहुत से चर्म-रोग नष्ट हो जाते हैं। इसीलिए सभी धर्मों में स्नान को एक धार्मिक रूप दिया गया है।

चर्म-रोगों में भोजन पर विशेष ध्यान देना जरूरी है। इसके रोगी अक्सर अधिक खाने के आदी होते हैं। अतः भोजन में स्टार्च और शुगर दोनों चर्म-रोगों को बढ़ाते हैं। साथ ही हर प्रकार की बदहजमी से बचना चाहिए। भोजन में एक ही साथ स्टार्च और प्रोटीन नहीं लेना चाहिए।

भोजन में अनुचित मिश्रण और असंयम से प्रायः बदहजमी की शिकायत रहती है। बदहजमी से चमड़ी में अक्सर जलन होती है। पुराने रोगियों में अधिक दवाओं के कारण उनका त्वचा फट जाती है। मुँहासा और डोंडसा अधिकतर ब्रोमाइन लगाने से पैदा होता है और बहुत-सी दवाइयों में ब्रोमाइन मिलाया जाता है।

सोरियासिस (लाल चकत्ता) की पहचान छोटे-छोटे दागों से होती है। शरीर की सतह से वे कुछ ऊँचे उठे रहते हैं और त्वचा की परतों से ढँके रहते हैं। खासकर गरमी के दिनों में यह बीमारी अधिक होती है। चमड़ा मोटा और लाल हो जाता है तथा वहाँ जलन और दर्द भी होने लगता है।

वे धब्बे मटर से लेकर अठन्नी तक के आकार के होते हैं। मुँह के ऊपर होने पर हजामत बनाने के बाद मुख की आकृति बिलकुल बिगड़ जाती है। शरीर के खुले भागों में होने पर मनुष्यों को बहुत अपमान और हीनता की भावना का दुःख भोगना पड़ता है।

शरीर का बहुत बड़ा भाग इससे प्रभावित हो सकता है। नीचे की ओर पैरों तक यह बीमारी फैल सकती है। कभी-कभी

केवल छूने मात्र से चमड़ी की परतें छूटने लगती हैं। सोरियासिस जल्दी दूर होनेवाली बीमारी नहीं है। रोगियों को वर्षों तक कष्ट भोगना पड़ता है। बाँह के अगले भागों या केहुनी के पास या सम्पूर्ण शरीर में यह रोग फैल सकता है। गरमी में यह अच्छा हो जाता है और जाड़े के दिनों में अधिक बुरा रूप अख्तियार करता है।

एक बार अच्छा होने पर भी इस रोग के दुबारा प्रकट होने का भय बना रहता है। इस रोग से बिल्कुल मुक्त होने के लिए काफी लम्बा समय लगता है। भोजन में थोड़ी भी बदपरहेजी करने से रोग दुबारा आक्रमण करता है। इसीलिए सोरियासिस के रोगी को काफी समय तक नियमपूर्वक भोजन तथा विवेक से खाद्य-पदार्थों का चुनाव करना पड़ता है। चाय, कॉफी वगैरह से परहेज करना आवश्यक है। रोग के दुबारा प्रकट होने पर समय-समय पर छोटे उपवासों से रोगी को बहुत आराम और लाभ मिलता है।

एग्जिमा (उकवत) साधारण तौर पर शरीर के सभी भागों में होता है। केहुनी, अँगुलियों हाथ की कलाइयों, पीठ, कान, गुदा और जननेंद्रिय पर अधिकांश में फैलता है। चेहरे और पेड़ू में भी फैलता है। चमड़ी मोटी होने लगती है, फट भी जाती है और उसमें काफी खुजलाहट भी होती है। चमड़ी के छिल जाने के कारण रोगी का कष्ट और अधिक बढ़ जाता है। सूखे चकत्ते, जो केहुनी, घुटने और एड़ियों में पाये जाते हैं, वे अधिक खुजलाते और जलते रहते हैं।

रोग के प्रारम्भ में उचित पथ्य और उपवास इन रोगों में बहुत लाभदायक है। इससे उकवत बहुत जल्दी अच्छा हो जाता

है। छोटे बच्चों में भी यह बीमारी पायी जाती है। उनके भीतर वह रोग बहुत दिनों तक घर बनाये रहता है। बच्चों का उपवास सर्वदा अनुभवी उपवास-विशेषज्ञ के निर्देशन और निरीक्षण में कराना चाहिए।

इसमें अक्सर लम्बे उपवासों की जरूरत नहीं है। अगर रोगी की अवस्था बहुत खराब हो, तो उसके लिए लम्बे उपवास अधिक लाभकारी होते हैं। कुछ रोगियों को कई छोटे-छोटे उपवास कराना ही पर्याप्त है। दो उपवासों के बीच की अवधि में रोगियों को उचित और संतुलित पथ्य देना चाहिए।

घावों को नाखून से रगड़ना और खुजलाना नहीं चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, रगड़ने और खुजलाने की क्रिया को ही बन्द रखना जरूरी है। क्योंकि इससे रोगियों की अवस्था और बिगड़ जाती है। खुजलाहट से बचने के लिए सफाई पर ध्यान रखना आवश्यक है। अक्सर गरम जल से स्नान करना लाभकारी रहता है। ●

२८. पुरुष-जननेन्द्रिय की ग्रन्थियों का बढ़ना

(प्रोस्टेटिक्स इनलार्जमेण्ट)

शिश्न-ग्रन्थि पुरुष-जननेन्द्रिय की सहायक होती है। मूत्राशय की गर्दन के चारों ओर यह ग्रंथि रहती है। ठीक इसके नीचे मूत्र-नली से पेशाब इसीके बीच से निकलता है। इसी लम्बी ग्रन्थि से एक किस्म का तरल द्रव्य निकलता है और (युरेथा) मूत्र-द्वार के पास पहुँचकर वीर्य में मिल जाता है। मूत्र-द्वार के पास इस शिश्न-ग्रन्थि के बढ़ जाने के कारण पेशाब के बहाव में कम या अधिक मात्रा में रुकावट होने लगती है।

जैसे बच्चों में टान्सिल के बढ़ जाने की शिकायत बराबर पायी जाती है, ठीक वैसे ही पैंतीस वर्ष से अधिक उम्रवाले व्यक्तियों में अक्सर शिश्न-ग्रन्थि के बढ़ जाने की बीमारी होती है। स्त्री की योनि-व्याधि का कारण वह पुरुष है, जिसकी शिश्न-ग्रन्थि बढ़ गयी है और जो मूत्र-नली की जलन, सूजन और नासूर से ग्रसित हो चुका है। पचास वर्ष से अधिक आयुवाले व्यक्तियों में अधिकांश लोग कम या अधिक मात्रा में जननेन्द्रिय की ग्रन्थियों की सूजन और नासूर से आक्रान्त पाये जाते हैं।

मूत्राशय के विकृत होने तथा बचे हुए पेशाब के जमा होने से रोगियों की पीठ, कमर, कूल्हों एवं पैरों में दर्द होने लगता है और कभी-कभी इसीसे कमर-दर्द और कूल्हे व घुटने की

गठिया जैसी व्याधियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। मूत्र-नली से पूरा पेशाब न निकल पाने के कारण मूत्राशय में सूजन और जलन पैदा हो जाती है, जिसे साइस्टोइटिस (मूत्राशयसम्बन्धी बीमारी) कहते हैं। मूत्रनली और उसकी गर्दन में नासूर भी पैदा हो जाता है। वृद्ध पुरुषों की जिन बीमारियों का निश्चित और सफलतापूर्वक उपचार नहीं हो पाया है, उनमें यौन-व्याधियाँ प्रमुख हैं।

शिश्न-ग्रन्थि के बढ़ जाने का रोग ३५ वर्ष की आयु से लेकर ७० वर्ष की आयु तक कभी भी हो सकता है। लम्बे पेडूवाले मोटे व्यक्ति अक्सर शिश्न-ग्रन्थि के बढ़ जाने की बीमारी से आक्रान्त रहते हैं, क्योंकि उनका मोटापा और आलस के कारण बस्ति-प्रदेश (पेलविक) की संचार-क्रिया में अवरोध उत्पन्न होता है। इसके कारण रक्त का बहना रुक जाता है और शिश्न-ग्रन्थि बड़ी हो जाती है। दुबले-पतले व्यक्ति और शारीरिक परिश्रम करनेवाले व्यक्ति भी इस रोग से बच नहीं पाते हैं।

पुरुषों की अधेड़ अवस्था (आधी उम्र) के बाद धीरे-धीरे पेशाब के प्रवाह में रुकावट उत्पन्न होने के कारण उन्हें बार-बार पेशाब करने की इच्छा होती है, जिससे उनको काफी तकलीफ होती है। ५५ से ६० वर्ष के बीच की आयु के पुरुषों में पेशाब का रुकना प्रारम्भ हो जाता है—अर्थात् जितना पेशाब बाहर निकल सकता है, उसके निकल जाने के बाद एक या दो औंस पेशाब मूत्राशय में रुक जाता है। मूत्राशय में शक्ति नहीं रह जाती है कि पूरे पेशाब को एक साथ बाहर निकाल दे। इससे कमजोरी दिन-ब-दिन बढ़ती जाती है। शेष बचा हुआ पेशाब मूत्राशय में जहर पैदा कर देता है। समय पाकर समूचे मूत्राशय में

बीमारी उत्पन्न हो जाती है, जिससे रोगी अधिक कष्ट भोगते हुए मर जाता है।

जैसे शिश्न की ग्रन्थियाँ बढ़ती या फैलती हैं, वैसे उनके वजन के कारण मूत्राशय नीचे की ओर खिंच जाता है और जिसके कारण पूरे पेशाब का एक साथ बाहर निकलना बहुत कठिन हो जाता है। पेशाब की अधिक रुकावट से शिश्न में चेतना जगती है, जिससे मूत्र बाहर करने में और अधिक परेशानी होती है। इसी बचे हुए पेशाब से मूत्राशय में साईस्टाइटिस और मूत्र-द्वार पर यूरीथ्राइटिस जैसी भीषण व्याधियों की उत्पत्ति होती है। इनके कारण तत्सम्बन्धी अंगों में काफी जलन, सूजन और पीड़ा होने लगती है।

मूत्राशय और मूत्र-द्वार के भीतरी चमड़े की परतें श्लेष्मा-सम्बन्धी अंगों, जैसे नाक, मुख, गला आदि से मिलती-जुलती हैं। इसीलिए जब इन अंगों में जलन और सूजन पैदा होती है, तब इनके भीतर से पीब, मवाद, रक्त आदि दूषित तरल द्रव्य निकलने लगते हैं।

इसी सूजन और जलन के पुरानी हो जाने पर मूत्राशय की गरदन पर नासूर हो जाता है, जिससे मूत्रनली से रक्त का स्राव (हेमरेज) होने लगता है। अक्सर ऐसा कम ही रोगियों में देखने में आता है और ऐसी अवस्था में शायद ही कैन्सर होता हो। जब जलन पैदा करनेवाले स्नायु सख्त बन जाते हैं, तब कैन्सर की तैयारी शुरू हो जाती है। यद्यपि शिश्न के कैन्सर की उत्पत्ति असम्भव नहीं है, किन्तु शिश्न के विस्तृत होने की बीमारी की तुलना में शिश्न के कैन्सर के रोगियों की संख्या बहुत थोड़ी पायी जाती है।

चिकित्सकों ने शिश्न की ग्रन्थियों के विस्तार के कारण का पता ठीक से नहीं लगाया है। किन्तु इसके साथ रोग में और जो विकास होता है, वह सब मनुष्यों की गलतियों के कारण होता है। अधिक भोजन, अधिक मिठाई, मिर्च, मद्य, अधिक पान और अधिक विषय-भोग इस रोग के बहुप्रचलित कारण प्रतीत होते हैं। अगर इन रोगियों के चाल-चलन, खान-पान पर ठीक से नियंत्रण नहीं रखा गया, तो उनकी अवस्था धीरे-धीरे और अधिक खराब हो जाती है।

शिश्न-ग्रन्थियों के एक रोगी से मेरी मुलाकात हुई थी। उसने मुझे बताया कि मैं घोड़े की तरह खाता हूँ। उसके चिकित्सक ने कोई पथ्य-सम्बन्धी आदेश उसे नहीं दिया था। उसका इलाज प्रचलित औषधियों और एक्सरे से किया जा रहा था।

शिश्न-सम्बन्धी बीमारियों के लिए अभी तक सन्तोषपूर्ण उपचार ईजाद नहीं हो सका है। शिश्न की ग्रन्थियों को आपरेशन से काटकर उड़ा देने या इन्जेक्शन से दबा देने के प्रयत्न किये गये थे, किन्तु वे सभी पूर्ण रूप से असफल साबित हुए।

कोई ऐसा उपचार नहीं है, जो कि मनुष्यों के बुरे आचरण और चरित्र-हीनता के कारण शरीर में व्याप्त विष को दूर कर सके। विषय-वासनाओं की अधिकता और वेश्याओं के समागम से उत्पन्न शिश्न-ग्रन्थियों के विस्तार को औषधियों और शल्य-चिकित्सा से ठीक नहीं किया जा सकता। सदाचार, सद्वृत्ति, संयम, नियम और पथ्य-परहेज से ही जीवन सुधारा जा सकता है।

समझदार और अनुभवी चिकित्सक शिश्न-ग्रन्थियों के विस्तार और फैलाव को आपरेशन से काटकर दूर नहीं करना चाहते हैं।

क्योंकि रोग की उत्पत्ति का असली कारण तो आपरेशन के वाद भी रह जाता है, जो रोगी को स्वस्थ होने नहीं देता। जब तक रोग-कारण वर्तमान हैं, तब तक रोगी का कष्ट और दुःख भी रहता ही है।

इस रोग के एक बार ठीक हो जाने पर भी, थोड़ी-सी लापरवाही बरतने से भी रोग के दुबारा प्रकट होने में कोई देर नहीं लगती। इसका इलाज डॉक्टरी औषधियों और शल्य-क्रिया से असम्भव है। पहले-पहल रोगियों को अपने जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहिए। जीवन के समस्त आदर्श नियमों का सम्मान करना तथा उन्हींके मुताविक जीवन जीना इस रोग से छुटकारा पाने के लिए आवश्यक है।

मैंने रोगियों की शिश्न-ग्रन्थियों को गेंद जितनी बड़ी देखा है और वे इतनी सख्त थीं कि यन्त्रों के द्वारा रोगी के पेशाव को निकाला जाता था, क्योंकि रोगी स्वयं पेशाव करने के योग्य नहीं रह गये थे। एक सप्ताह के उपवास के वाद ग्रन्थियों के वढ़े भाग ठीक अपने स्वाभाविक रूप में आ गये। उनका कड़ापन विलकुल दूर हो गया। सावधानी वरतने पर पेशाव भी स्वाभाविक रूप से बिना किसी जलन या रुकावट के होने लगा था। साधारण तौर पर शिश्न की बढ़ी हुई ग्रन्थियों को घटाने में अधिक समय की अपेक्षा रहती है।

कुछ बीमारियों में शिश्न-ग्रन्थि के सभी बढ़े भागों को छोटा कर देना सम्भव नहीं रहता है, किन्तु उपवास से काफी मात्रा में सूजन में कमी आ जाती है, जिससे रोगी को धारा-प्रवाह पेशाब होने लगता है। पीठ, कूल्हे और पैरों का दर्द भी खत्म हो जाता है। यह सब भोजन को रोकने और ठीक से आराम करने से ही सम्भव है।

२९. सूजाक और उपवास

निकटवर्ती नगर से टेलीफोन द्वारा सूचना मिली कि मुझे सूजाक (गनोरिया) की बीमारी है। परामर्श दें कि अब मुझे क्या करना चाहिए। मैंने उन्हें परामर्श दिया कि वे शीघ्र ही विश्रामपूर्वक उपवास प्रारम्भ कर दें।

"किन्तु मुझे काम-काज देखना जरूरी है और मेरा व्यवसाय ऐसा है कि बगैर मेरे ध्यान दिये चलना मुश्किल है। मैं उपवास नहीं कर सकता हूँ। क्या पेनसिलिन लेना मेरे लिए लाभकारी नहीं सिद्ध होगा?"

मैंने बताया कि "पेनसिलिन से सिर्फ रोग के लक्षणों को दबा दिया जा सकता है, किन्तु थोड़े ही दिनों के बाद रोग के लक्षण पुनः प्रकट हो जायेंगे।" कुछ और बहस के बाद रोगी ने पेनसिलिन लेना ही तय किया। कुछ दिनों के बाद उसने मुझे सूचित किया कि पेनसिलिन से रोग बिलकुल अच्छा हो गया है और उसके सभी लक्षण बहुत जल्दी ही मिट गये हैं। यह तो पुरानी कहानी है, किन्तु वह इसे नहीं समझ पाया था। कुछ और दिनों के बाद दुबारा उक्त रोगी ने मुझे बतलाया कि उसमें रोग के सभी लक्षण पुनः लौट आये हैं और अब ऐसी परिस्थिति में उसे क्या करना उचित है।

पुनः मैंने उपवास करने की उसे सलाह दी, किन्तु उसने कहा कि मैं उपवास नहीं कर सकता हूँ। तब मैंने कहा कि आप केवल फलों का सेवन कर सकते हैं। रोगी ने कहा कि मैं ऐसा

ही प्रयत्न करूँगा। सभी तरीकों से बार-बार असफल रहने पर उसने अन्त में उपवास करना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम-स्वरूप उसके रोगसम्बन्धी सभी कारण मिट गये और वे पुनः कभी प्रकट नहीं हुए।

वर्ल्ड हेल्थ आर्गनाइजेशन ने सन् १९६२ में गनोरिया (सूजाक) के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण विज्ञप्ति प्रकाशित की थी कि "छूत की गनोरिया के विशेषज्ञ वावजूद अत्यधिक पेनसिलिन व शक्तिशाली एन्टी-बायोटिक्स के भी, संसार में बढ़ती हुई सूजाक की बीमारी को नियंत्रित करने में पूर्ण रूप में असफल रहे।"

सूजाक के रोगियों में अक्सर किशोर वय के बालक और युवा पुरुषों की संख्या अधिक बढ़ रही है और जिन्हें गलत शिक्षा दी जाती है कि एक या दो पेनसिलिन से उनके सभी दोष दूर कर दिये जायेंगे। पन्द्रह से लेकर पचीस वर्ष तक आयु के युवकों में यह रोग विशेष रूप से पाया जाता है।

यौन-व्याधियों (गुप्त रोगों) की इस बढ़ती से तत्सम्बन्धी क्लिनिक भी काफी संख्या में बढ़ रहे हैं। इसके रोगी अक्सर बीमारी को छिपाते हैं और उनके चिकित्सक भी गुप्त ही रखते हैं। सही बात तो यह है कि केवल दस प्रतिशत गनोरिया के रोगियों का ही पता चलता है, शेष प्रकाश में नहीं आते हैं।

रोग की छूत से बचाव करने के लिए कुछ विशेषज्ञ टीके के आविष्कार की बात करते हैं। बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि वे कभी भी मनुष्यों का आचरण सुधारने की बात नहीं करते हैं। उन्होंने इसे अपना सिद्धान्त बना लिया है कि युवकों के गलत कदम को ठीक रास्ते पर नहीं लाया जा सकता।

यानी उन्हें सच्चरित्र बनाना असम्भव है, ऐसी उन लोगों की धारणा प्रतीत होती है।

रोगों के ऊपरी लक्षणों को औषधियों से दबाने से रोगों का जड़ से उन्मूलन नहीं किया जा सकता। कुछ लोगों की धारणा है कि सुन्नत करा देने से यह बीमारी नहीं होती है। लेकिन सुन्नतवाले (जिनकी मुसलमानी की गयी है) और बगैर सुन्नत-वाले सब पुरुषों में यह बीमारी देखी जाती है। अतः चाल-चलन सुधारने के बजाय सुन्नत कराने का भी कोई विशेष लाभ नहीं है।

गनोरिया अपने में स्वयं सीमित रहनेवाली बीमारी है। इसीलिए अच्छी होने से पहले यह बीमारी कई रूपों में बदलती रहती है। इसीलिए रोगी उपचार कराने से और कभी तो बगैर उपचार के भी अच्छे हो जा सकते हैं। रोगी को प्रचलित दवाइयों की अपेक्षा अधिक लाभ गरम पानी के उपयोग से मिलता है। गनोरिया चार से लेकर छह सप्ताहों में अच्छी हो जाती है। उपवास और विश्राम से इससे भी कम समय में रोगी पूर्ण रूप से स्वस्थ हो सकते हैं। रोग की सारी जटिलताएँ उपवास से दूर हो जाती हैं।

तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, मद्य, वैषयिक जीवन, अत्यधिक भोजन, अधिक देर तक रात्रि में जागरण, शक्ति से अधिक परिश्रम करना आदि समस्त आदतें रोगियों को दुर्बल बनाती हैं। इनके कारण रोगों से छुटकारा पाने में विलम्ब तो होता ही है, और साथ ही रोगों की जटिलताएँ भी बढ़ जाती हैं।

मेरा जहाँ तक अनुभव है, स्त्रियों की यह बीमारी बहुत जल्दी दूर हो जाती है और पुरुषों की अपेक्षा उनको कष्ट भी कम होता

है। इसका कारण यही है कि स्त्रियों की मूत्रनली कुछ बड़ी होती हैं, जिससे पेशाब का बहाव अच्छी तरह होता है। इस बीमारी में पेशाब का धारा-प्रवाह निकलना अत्यधिक जरूरी है। किसी प्रकार का व्यवधान या लिगेचर (रबड़ की नली) को मूत्राशय में डाल देने से पेशाब करने में बाधा उत्पन्न हो जाती है, जिससे रोग निश्चित ही अधिक जटिल हो जाता है।

इस बीमारी में अधिक पानी पीना बहुत लाभकारी होता है। रोगी जितना पानी पी सके, उतना ही अच्छा। अधिक पानी पीने का मतलब होता है अधिक पेशाब होना। अधिक पेशाब होने से मूत्रनली की अच्छी सफाई हो जाती है। इन्जेक्शन से छूत लगनेवाले विष-पदार्थ फिर मूत्राशय में लौट आते हैं और फिर ये ही पदार्थ पेशाब के साथ मूत्र-द्वार को प्रभावित करते हुए बाहर निकल जाते हैं। स्त्री तथा पुरुष दोनों को बाहरी सफाई रखना बहुत ही आवश्यक है।

ऐसी बीमारियों में उपवास करना सबसे अधिक लाभकारी साधन माना जायगा। यदि किसी परिस्थिति-विशेष के कारण रोगी उपवास न कर सके, तो उपवास के स्थान पर रोगी को पथ्य के रूप में केवल फल देना चाहिए। दिनभर में तीन बार फलाहार के अलावा बीच में किसी भी प्रकार का भोजन करना अनुचित है। इससे रोगी को स्वास्थ्य प्राप्त करने में काफी मदद मिलती है और बीच में कोई उलझन भी नहीं पैदा होती। खतरनाक अवस्था में भी रोगी को काफी आराम मिलता है।

उपवास कोई उपचार नहीं है और यह गनोरिया का उपचार भी नहीं करता है। उपवास में शरीर की आरोग्यकारी प्रक्रियाएँ सक्रिय होकर गनोरिया के मूल कारणों को दूर करती हैं और रोगियों को स्वाभाविक स्वास्थ्य की हालत में ले आती हैं। ●

३०. लकवा या पक्षाघात

पैरालिसिस एजीटन्स (लकवा–पक्षाघात) को कम्पवायु (शेकिंग पैल्सी) और 'पारकिन्सन' की बीमारी भी कहते हैं। यह नाम इंग्लैंड के डॉक्टर जेमल पारकिन्सन के नाम पर रखा गया है। पहले-पहल उन्होंने सन् १८१७ में इस रोग का वर्णन किया था।

साधारण तौर से अधिक उम्र होने पर यह बीमारी होती है। अक्सर ४० वर्ष की आयु के बाद ही यह बीमारी प्रारम्भ होती है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में कुछ अधिक संख्या में यह बीमारी फैली हुई है। इससे मांस-पेशियाँ कुछ कड़ी पड़ जाती हैं और अकड़ जाती हैं, जिसके कारण ऐच्छिक मांस-पेशियों के काम में विलम्ब होने लगता है। जब रोगी शान्त बैठा रहता है, तब उसके भीतर कँपकँपी होने लगती है और जब वह कार्य करता रहता है, तब कँपकँपी नहीं होती है। रोग के बढ़ जाने पर उसके लक्षण निम्नलिखित रूप में दिखाई पड़ते हैं—हाथ-पैर में कँपकँपी और थरथराहट होती है, मांस-पेशियों में लचक नहीं रहती—वे स्थिर हो जाती हैं, गति अस्वाभाविक रूप से मन्द हो जाती है, आँखें स्थिर, अपलक और चढ़ी रहती हैं, चेहरे के भाव बिलकुल स्थिर हो जाते हैं इत्यादि।

उल्टी मांस-पेशियों के बारी-बारी सिकुड़ने और फैलने के कारण हल्का-सा तेज कम्पन होने लगता है। यह कम्पन केवल लकवा या पक्षाघात तक ही सीमित नहीं होता, किन्तु अत्यधिक

मैथुन, मद्य-सेवन की पुरानी आदत, चित्तभ्रम, बेहोशी, अफीम, साँस घुटनेवाली गैस, धातु-मिश्रित औषधियों और अन्य प्रकार के जहरों से उत्पन्न बीमारियों में भी पाया जाता है। नाड़ियों की दुर्बलता, शक्ति-हीनता, बुढ़ापा, धमनियों का कड़ापन, हिस्टीरिया, कण्ठमाला, पेशियों का सुन्न हो जाना (पारिसिस) आदि बीमारियों में भी कम्पन देखा जा सकता है।

यह कम्पन साधारण तौर पर हाथ-पैरों में अधिक हुआ करता है। बुढ़ापे का कम्पन बहुत बारीक होता है। पैरालिसिस एजीटन्स में कम्पन ताल-बद्ध और नियमित रहता है।

पक्षाघात धीरे-धीरे प्रारम्भ होकर शरीर के छोरों में कम्पन और कमजोरी दोनों को साथ लेकर आगे बढ़ता है। प्रारम्भ में ही प्रयत्न करने पर कम्पन पर काबू पाया जा सकता है, किन्तु धीरे-धीरे बीमारी बढ़ जाने और पूरे शरीर में फैल जाने पर कम्पन पर नियंत्रण रखना सम्भव नहीं हो पाता है।

इस रोग के बढ़ जाने पर मस्तिष्क ढीला पड़ जाता है, बुद्धि मन्द हो जाती है, व्यक्ति झक्की हो जाता है, आगे को गिर पड़ने की-सी प्रवृत्ति रहती है, अंगुलियाँ बेचैन रहती हैं और वे ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो रोटियों को छोटे टुकड़ों में बराबर तोड़ती जा रही हैं। लकवे से आक्रान्त मांस-पेशियों की शक्ति बराबर घटने लगती है। मामूली जकड़न, चलने के ढंग में परिवर्तन और मानसिक विकार भी उत्पन्न हो जाते हैं। बढ़ी हुई बीमारी में जीभ और चिबुक (ठुड्डी) भी थर्राहट से काँपते हुए नजर आते हैं। कभी-कभी जबान भी बन्द हो जाती है। कुछ रोगियों की तो उत्तेजना के कारण इतनी बुरी हालत हो जाती है कि अधिक कँपकँपी के मारे वे ऊपर-नीचे कूदने लगते हैं।

अक्सर रोगी कँपकँपी (टिमर) को कोई महत्त्व नहीं देते हैं। जब कभी तनाव, बदहजमी, जोड़ों की सूजन एवं अन्य तकलीफें होती हैं, तो वे बिना सोचे-विचारे डॉक्टरों के पास पहुँच जाते हैं।

'विलसन' की बीमारी बहुत अंशों में 'पारकिन्सन' की बीमारी से मिलती-जुलती है। उसकी सही पहचान करना भी बहुत कठिन है। 'विलसन' की बीमारी में यकृत बड़ा और कड़ा हो जाता है। सर्वसाधारण पक्षाघात की अपेक्षा विलसन की बीमारी अधिक जटिल प्रतीत होती है। विलसन की बीमारी होती भी बहुत कम है।

अपने संस्थान में मैंने इस रोग से ग्रसित एक महिला को तीन महीने के उपचार से काफी लाभ पहुँचाया है। उसके हाथ और भुजाओं में इतनी अधिक कँपकँपी होती थी कि वह सात वर्षों से कुछ भी लिखने में असमर्थ थी।

दो सप्ताह के उपवास के पश्चात् उसके हाथ बिल्कुल स्वाभाविक रूप में चलने लगे और अब वह पत्र भी लिख सकती थी। उपवास तोड़ने के बाद भी हाथों में कँपकँपी का एक दौरा आया था, परन्तु वह जोरदार नहीं था, जिससे उसके कार्य में कोई व्यवधान पड़ता। दूसरा उपवास करवाना सम्भव नहीं हो सका, क्योंकि वह यहाँ से चली गयी थी।

पक्षाघात को स्नायु-सम्बन्धी बीमारी बतलाते हैं, किन्तु रोग के मूल कारण अभी तक पूर्णरूप से अज्ञात हैं। मस्तिष्क और स्नायु में परिवर्तन होने से रोगियों की मृत्यु भी हो जाती है। अध्ययन करने से रोग के अन्त का पता चलता है;

परन्तु रोग कैसे और किस कारण से पैदा हुआ; इसका सही पता लगाना अभी तक सम्भव नहीं हो पाया है।

इस रोग के प्रारम्भिक लक्षण रोगियों में बहुत पहले से पैदा हो जाते हैं। यह रोग बीस वर्ष या और अधिक पहले से अपना विकास धीरे-धीरे शरीर में करता रहता है। मस्तिष्क और नाड़ी-तन्तुओं की अन्तिम अवस्था से पता लगाना कि बीस वर्ष पहले यानी रोग के प्रारम्भ होने के समय इन तन्तुओं की कैसी दशा रही होगी, बहुत कठिन है।

कभी-कभी असमय में ही नाड़ी-मण्डल और स्नायुओं का क्षय होने लगता है, किन्तु यह भी जानना होगा कि इन आवश्यक स्नायुओं के क्षय का वास्तविक कारण क्या है और मस्तिष्क और स्नायु के, समय के पूर्व ही, बिगड़ जाने के क्या कारण हैं। अधिक उम्र होने पर धमनियाँ सख्त पड़ जाती हैं। उनसे मस्तिष्क और कोषाओं को पर्याप्त खुराक नहीं मिलती। और स्व-संचालित मांस-पेशियों पर नियंत्रण नहीं रह जाता। तब उचित पोषण-तत्त्व के अभाव में लकवा या पक्षाघात का आक्रमण होता है।

अथवा, मस्तिष्क-सम्बन्धी स्नायुओं के स्वयं दूषित हो जाने पर कम आयु में भी पक्षाघात का आक्रमण हो जाता है। कभी-कभी सिर में चोट लगने या कोई आघात पहुँचने से भी यह रोग हो जाता है।

शक्तिहीन व बहुत कमजोर पुरुषों और खासकर ६० वर्ष से ऊपर की आयुवाले व्यक्तियों को, जिनकी धमनियाँ पहले से ही बड़ी और कड़ी हो जाती हैं, अक्सर कँपकँपी शुरू हो जाती है। अत्यधिक मैथुन से भी इस रोग की उत्पत्ति मानी जाती है।

अत्यधिक आनन्द और खेलकूद में अधिक मात्रा में डूबे रहने से भी मनुष्यों में कमजोरी आ जाती है। अधिक परिश्रम, रात में अधिक देर तक जागने, अत्यधिक भोजन, विषय-भोग, विषाक्त पदार्थों का सेवन, मानसिक अशांति, विश्राम और नींद में कमी आदि के कारण नाड़ी-दौर्बल्य, मानसिक कष्ट तथा अन्य प्रकार की समस्त शारीरिक दुर्बलताएँ प्रकट हो जाती हैं।

इस प्रकार शरीर को दुर्बल और कमजोर बनानेवाले तथा स्नायुओं में कड़ापन पैदा करनेवाले समस्त कारण 'पैरालिसिस एजीटन्स' के जन्मदाता माने जा सकते हैं।

चिकित्सकों का कहना है कि लकवा या पक्षाघात की कोई औषधि नहीं है, जिससे रोग निर्मूल हो सके। मैं उनके इस मत से सहमत हूँ। मेरे पास औषधियों और सर्जरी से अलग एक दूसरा साधन है, जिससे रोगियों को रोग से छुटकारा मिल सकता है। अगर प्रथम लक्षण के प्रकट होते ही रोगियों का उपचार किया जाय, तो अधिक-से-अधिक रोगियों का दुःख दूर किया जा सकता है। कुछ दिनों से लेकर कुछ सप्ताह तक उचित उपवास करने से बहुत रोगियों का कल्याण हो चुका है और बहुतों का हो रहा है। यदि सभी रोगियों का रोग पूर्ण रूप से दूर न भी हो, तो भी बहुसंख्यक रोगियों का रोग निःसंशय दूर किया जा सकता है।

सिर के घाव के कारण और 'एनसिफैलाइटिस लेथार्जिका' से उत्पन्न होनेवाले लकवा और पक्षाघात के रोगियों को पूर्ण स्वस्थ और नीरोगी बनाना बहुत कठिन है। इनके उपचार में वर्षों लग जाते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य रोगियों का कुछ कम

समय में ही रोग दूर कर दिया जा सकता है। रोग को पूरा हटाने के लिए कई महीनों और कभी-कभी कई वर्षों तक चेष्टा करनी पड़ती है। कम्पन को हटाने के लिए कभी-कभी पाँच उपवास करने पड़ते हैं, तब कहीं जाकर रोग से पिण्ड छूटता है।

अगर प्रयत्न किया जाय तो कम आयुवाले रोगियों को पूर्ण रूप से स्वस्थ किया जा सकता है। सत्तर वर्ष से अधिक आयुवाले पुराने रोगियों को भी काफी हद तक आराम पहुँचाया जा सकता है।

उपवास के पश्चात् रोगी का भोजन सीमित होना चाहिए। पथ्य में ताजे फल और हरी सब्जियाँ अधिक उपयोगी रहती हैं। सूखे मेवे और शुद्ध पनीर भी रोगी के लिए लाभप्रद है। रोटी, मांस, पक्वान्न, नमक, मसाला, छौंक, चटनी, कॉफी, चाय, कोको इत्यादि बिलकुल ही त्याज्य हैं। नशीले पदार्थों का सेवन हानिकारक होता है। गाढ़ निद्रा और पर्याप्त विश्राम रोगी के स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। प्रतिदिन हलका धूप-स्नान करना उत्तम है। कुशलतापूर्वक हलका व्यायाम भी उपवास के पश्चात् रोगियों के स्वास्थ्य के लिए अच्छा है।

३१. गुर्दे की सूजन (नेफ्राइटिस)

"आपकी बच्ची को छह सप्ताह और जीवित रहना है। उसकी जीवन-रक्षा के लिए हम लोग इससे अधिक कुछ नहीं कर सकते हैं।" माडर्न हास्पिटल के प्रमुख अधिकारी ने कई चिकित्सकों से परामर्श करने के पश्चात् अपना अन्तिम उत्तर दिया। वह नौ वर्षीया बालिका थी, जो गुर्दे की सूजन से कष्ट भोग रही थी। वह दो सप्ताह तक अस्पताल में थी। उसके सिर से लेकर पैर तक सारे शरीर में पानी ही पानी हो गया था। उसे जलोदर की बीमारी थी। चिकित्सकों के मतानुसार वह अब मर चुकी थी।

बालिका के माँ-बाप उसे यों छोड़ना नहीं चाहते थे। कोई भी नहीं छोड़ सकता। उनकी आशाएँ बँधी हुई थीं। चिकित्सकों के इस प्रकार के प्राणदण्ड को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। माँ ने बच्ची के पिता से कहा कि "बच्ची को अस्पताल से बाहर ले चलो। किसी दूसरी जगह चलकर देखा जाय। शायद प्राण-रक्षा हो जाय।" चिकित्सक ने कहा कि "ठीक है। आप लोग प्रयत्न करें, हो सकता है, कोई मदद मिल जाय।"

लड़की को अस्पताल से वे लोग बाहर तो ले आये, परन्तु कोई चिकित्सक नहीं मिलता था, जो उसे सँभाल सके।

कार की पिछली सीट पर बैठकर माँ ने बच्ची को अपनी गोदी में लिटा लिया और उसके पिता स्वयं गाड़ी चलाते हुए १२५ मील की दूरी तय कर 'हाईजिनिक इन्स्टीट्यूशन' तक

उक्त बालिका को ले आये। पिता ने पुत्री को ले जाकर संस्था के डायरेक्टर के सम्मुख रख दिया।

रोगी की पूरी कहानी सुनने के पश्चात् डायरेक्टर ने कहा कि "मैं गारण्टी तो नहीं दे सकता हूँ। परन्तु हम लोग प्रयत्न करेंगे। हम लोग उसे एक अवसर दे रहे हैं, जिससे उसका दुःख दूर हो जाय। मुझे विश्वास है कि वह अच्छी हो जायगी।"

उस बीमार बालिका को बिस्तर पर लिटा दिया गया। हर प्रकार का भोजन देना बन्द हो गया। उसको पीने के लिए थोड़ा-थोड़ा पानी, वह भी बहुत ही कम, दिया जाता था। एक ही रात्रि के उपवास में एडमा में काफी कमी दिखलाई पड़ी। पेशाब, पतली टट्टी और चमड़े की दरार से सभी विषाक्त पदार्थ कुछ ही दिनों में शरीर से बाहर निकल गये। हाथों की कलाइयाँ और एड़ियाँ, जो बढ़कर पैरों जितनी मोटी थीं, वे शीघ्र ही स्वाभाविक आकार में परिवर्तित हो गयीं। एक छोटी बच्ची, जो फूलकर मोटी हो गयी थी, पुनः चमड़ी और हड्डियों के ढाँचे में दीखने लगी।

इस तरह दो सप्ताह के उपवास के बाद उसे पथ्य दिया गया। स्टार्च, शुगर और प्रोटीनयुक्त ताजा फल और हरी सब्जियों की पथ्य में प्रधानता रहती थी। फल रसदार होते थे और सब्जियाँ पत्तीदार। इसके बाद बालिका के स्वास्थ्य में काफी सुधार होने लगा। पहले प्रगति कुछ मन्द थी, पर सन्तोष-पूर्ण थी। इस प्रकार नौ महीने के उपचार के बाद उसे 'हाईजिनिक इन्स्टीट्यूशन' से छुट्टी मिली।

कई वर्षों बाद उस लड़की की शादी भी हुई और वह उपवास-चिकित्सक से मिलने भी आयी थी। उसका स्वास्थ्य काफी

अच्छा था और उसे फिर कभी न तो गुरदे की बीमारी हुई या अन्य कोई बीमारी आयी। आज वही युवती एक प्रतिष्ठित पद पर कार्य कर रही है।

लेकिन सर्वदा ऐसा नहीं होता है। इस बीमारी से रोगी की मृत्यु नहीं ही होती हो, ऐसा कोई पक्का नियम नहीं है। ब्राइट की बीमारी या नेफ्राइटिस (गुरदे की सूजन) अधिक उम्र के स्त्री और पुरुषों में पायी जाती है। उनके गुरदे में भी काफी विकृति व कमजोरी आ जाती है। सभी रोगी इतनी जल्दी अच्छे भी नहीं होते हैं। कभी-कभी कुछ रोगी तो बिलकुल ही नहीं अच्छे होते हैं।

उपर्युक्त उदाहरण से पता चलता है कि हमारा शरीर अपनी बनावट और कार्यों में आश्चर्यपूर्ण ढंग से स्वास्थ्यकर परिवर्तन करता है, यदि उसे उपयुक्त अवसर दिया जाय। उस मरणासन्न बालिका की कोई चिकित्सा यहाँ नहीं की गयी थी, बल्कि वह स्वयं अपने आप स्वस्थ हुई।

उन्नीसवीं शताब्दी के एक प्रमुख चिकित्सक रिचर्ड ब्राइट इंग्लैंड के निवासी थे। बहुतों की बीमारी में उन्होंने देखा कि रोगियों के पेशाब में एक प्रकार का गाढ़ा सफेद पदार्थ 'आल-ब्यूमन' या पेशाब का जहर पाया जाता है। ऐसे रोगियों के गुर्दों का परीक्षण किया। तब उन्होंने आविष्कार किया कि गुर्दों की खराबी के कारण ही रोगियों की ऐसी अवस्था हुई है। रोगियों की इस बीमारी को नेफ्राइटिस या गुरदे की सूजन कहते हैं। चूँकि इस बीमारी का सबसे प्रथम पता लगानेवाले ब्राइट साहब थे, अतः उन्हींके नाम पर इसे 'ब्राइटस डिजीज' भी कहा जाता है।

इस बीमारी से गुरदों में दूषित परिवर्तन होने लगता है। जब पेशाब के साथ सफेद गाढ़े और दानेदार रक्त-मिश्रित पदार्थ बाहर निकलते हैं अथवा जब पेशाब रुक जाता है, तब रोगियों की अवस्था बहुत ही खराब हो जाती है। रोगियों की बुरी आदतें, दोषपूर्ण रहन-सहन और असंयम आदि से यह रोग होता है।

ब्राइट की पुरानी बीमारी का रोगियों के मस्तिष्क पर बड़ा बुरा असर पड़ता है। उनके मन में भय और शंका पैदा हो जाती है। पुरानी होने पर भी इस बीमारी में उपवास करने से बड़ी शीघ्रता से पूर्ण आरोग्य प्राप्त होता है। उपवास के बाद उचित पथ्य और संयम दोनों जरूरी हैं। गुर्दों की अपरिवर्तनीय अवस्था के पूर्व ही रोगियों को ये सब लाभ प्राप्त होते हैं।

अल्पाहारी और संयमी व्यक्तियों में यह बीमारी किसी भी रूप में पनपती नहीं है। अधिक भोजन करनेवाले पेटुओं को यह बीमारी अक्सर होती है। जो लोग अधिक औषधियों का प्रयोग करते हैं, उनके गुर्दों में जलन के कारण यह बीमारी अपना घर बना लेती है। गुर्दों के दोषयुक्त और विकृत होने पर रोगियों की आयु भी क्षीण हो जाती है। यही कारण है कि आजकल युवकों के गुर्दे स्वस्थ और स्वाभाविक नहीं रह जाते हैं और इसीसे दूसरी बीमारियों से भी वे आक्रान्त हो जाते हैं।

ऐसी स्थिति में बराबर लम्बे उपवासों की जरूरत नहीं पड़ती है। दस दिन, दो सप्ताह और कभी-कभी तीन सप्ताह का उपवास पर्याप्त रहता है। गुर्दे की अवस्था उपवास से बहुत जल्दी सुधर जाती है। पेशाब से अल्बुमन और रक्त का जाना दूर हो जाता है। रक्त की सफाई भी हो जाती है। विषाक्त पेशाब, सिर-दर्द, घुमरी-चक्कर, बार-बार पेशाब का रुक-रुककर होना, बिस्तर का

व्यक्तियों की अपेक्षा मोटे-ताजे व्यक्तियों में अधिकतर पायी जाती हैं, क्योंकि वे लोग अधिक भोजन करने के आदी होते हैं।

यकृत-प्रदेश और पित्ताशय की थैली में पथरी हो जाने के कारण पेड़ू में बड़ी पीड़ा शुरू हो जाती है। इसीको यकृत सम्बन्धी दर्द (हेपाटिक कोलिक) कहते हैं। पित्ताशय की पथरियाँ इतनी छोटी होती हैं कि जो पित्ताशय की थैली से सुगमतापूर्वक बाहर-भीतर आ-जा सकती हैं। इन पथरियों का पता रोगियों को कभी नहीं लगता है।

जब पथरियाँ अधिक बड़ी होती हैं, तब वे पित्ताशय की थैलियों से बाहर नहीं हो पाती हैं। अथवा जब वे बाहर निकलती हैं, तब रोगियों को अधिक पीड़ा होने लगती है। ज्यों ही पथरी पित्ताशय से मूत्राशय में प्रवेश करती है, त्यों ही दर्द शुरू हो जाता है। पथरी स्वभाव से ही अति पीड़ा देनेवाली होती है। यह एक स्थान से दूसरे स्थान तक चलती-फिरती है। कभी पेड़ू, कभी छाती, कभी कंधे के दाहिनी ओर तो कभी शरीर के अन्य भागों में यह पायी जाती है।

अथवा पथरी से पित्त-नली में बाधा उत्पन्न हो सकती है, किन्तु कमला (पीलिया) रोग नहीं हो पाता है। पथरी के होने से ही पित्ताशय की बीमारी स्वतः हो जाती है। यदि दोनों प्रणालियों में पथरी से रुकावट हो जाय, तो कमला रोग प्रारम्भ हो जाता है। जड़ैया बुखार, ठंड व दर्द का आवेग भी शुरू हो जाता है। अक्सर इसे पित्ताशय की बीमारी कहते हैं, जो महीनों और वर्षों तक रोगियों को सताती रहती है।

दर्द-नाशक औषधियों और शल्य-चिकित्सा से अक्सर इसका उपचार किया जाता है, किन्तु रोग को वे नियंत्रण में नहीं

ला सकते हैं। दुर्भाग्य का विषय है कि आपरेशन के बाद भी रोगी की बीमारी बनी रहती है और रोग के लक्षण पूर्ववत् पाये जाते हैं।

इस रोग के रोगियों की पाचन-प्रणाली नष्ट हो जाती है। पित्ताशय की थैली और यकृत (लिवर) दोनों कमजोर हो जाते हैं। इनमें जलन और सूजन पैदा हो जाती है। शरीर दुर्बल और दूषित हो जाता है। पित्ताशय की बनावट बिगड़ जाती है। इसमें खनिज तत्त्व जमा होने लगता है। लिवर के कार्यों में भी गड़बड़ी पैदा हो जाती है।

अविवेकपूर्ण भोजन, अत्यधिक मात्रा में कार्बोहाइड्रेटवाले खाद्य पदार्थों का सेवन, व्यायाम न करने आदि से दुर्बल और विषाक्त रोगियों की आँत में गैस के भर जाने और पित्ताशय की जलन से पथरी बनने लगती है। 'गाल स्टोन्स' या 'किडनी स्टोन' मूल रूप में एक ही बीमारी है। स्थान-भेद के कारण रोग का लक्षण अलग-अलग होता है। स्वस्थ मनुष्यों में पथरियाँ नहीं होती हैं। जिन व्यक्तियों का स्वास्थ्य वर्षों के दोषपूर्ण रहन-सहन के कारण गिर जाता है, उन्हें पथरियों से कष्ट भोगना पड़ता है। सन्मार्ग पर चलते हुए संयम से जीवन-यापन करनेवाला व्यक्ति कभी भी पित्ताशय की पथरियों से आक्रान्त नहीं हो सकता।

इस रोग से बचने का एक ही मार्ग है और वह है उपवास। उपवास करने पर स्वाभाविक स्वास्थ्य की प्राप्ति हो जाती है। इससे रोग का असली कारण दूर हो जाता है। यकृत की अवस्था ठीक हो जाती है। पित्ताशय की पथरियाँ चूर्ण बनकर बाहर निकल जाती हैं। पूर्ण विश्राम के साथ पूरा उपवास करने पर रोगी को आशातीत सफलता मिलती है।

उपवास की समाप्ति पर रोगी को फल व सब्जियों का पथ्याहार करना चाहिए। भोजन में स्वास्थ्यवर्धक तत्त्वों का उचित सम्मिश्रण अनिवार्य है। भोजन में एक साथ प्रोटीन और स्टार्च दोनों का होना ठीक नहीं है, क्योंकि इसके कारण आँतों में जलन पैदा होती है।

मेरे विचार से 'गाल स्टोन्स' के आपरेशन की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि दूषित तत्त्वों को दूर करके स्वस्थ और नैसर्गिक पोषण-तत्त्वों का निर्माण आपरेशन से नहीं हो पाता है। सभी अंगों को सुरक्षित रखते हुए शरीर के विषाक्त पदार्थों को बड़ी आसानी से बाहर करने का एकमात्र उपाय उपवास है। शरीर के समस्त जहर पेशाब, पाखाना, वमन, उल्टी, पसीना आदि रूपों में निकलकर दूर हो जाते हैं। इसलिए शरीर की थैलियों को काटने की जरूरत नहीं पड़ती।

उपवास से पित्ताशय की पथरी दूर हो जाती है। कुछ सप्ताह के उपवास से पथरियाँ टूटने लगती हैं और बालू आँत से बाहर हो जाती है। यकृत स्वाभाविक रूप में काम करने लग जाता है। शरीर की नियमित व व्यवस्थित सफाई के बाद स्वास्थ्य-निर्माण का कार्य द्रुत गति से चालू हो जाता है।

यह सब केवल उपवास का चमत्कार है। आठ या दस दिनों के उपवास में 'हेपाटिकक्कोलिक' के रोगियों को भी काफी लाभ होता है। उचित पथ्य और व्यायाम से रोगों की पुनरावृत्ति नहीं होती। ताजा फल, सलाद और बिना स्टार्च की सब्जियाँ अधिक लाभकारी होती हैं। दुर्बल और अशक्त रोगियों को, जिनके पोषक तत्त्व समाप्त हो जाते हैं, शरीर के स्वाभाविक रासायनिक संतुलन को पुनः प्राप्त करने के लिए अधिक समय और धैर्य की आवश्यकता है। ऐसे रोगियों के उपचार के लिए

अधिक अनुभवी और कुशल उपवास-चिकित्सक की देख-रेख जरूरी है। काफी लम्बे उपवास अधिक लाभकारी होते हैं। उनके उपचार में समय अधिक लगता है, फिर भी पथरी बनने में जितना समय लगता है, उसकी तुलना में उपचार का समय कुछ भी नहीं है। उपवास और उचित पथ्य से बहुत से रोगियों को पूर्ण रूप से आराम और आरोग्य प्राप्त हुआ है। यदि रोगी प्रचलित औषधियों का सेवन न करें, ऑलिव आयल, बाइल साल्ट, सैकड़ों अन्य प्रकार की दवाइयाँ तथा आपरेशन आदि को ठुकरा दें, उपवास के सहयोग से रोग के मूल और वास्तविक कारण को दूर करने का प्रयत्न करें, तो उन्हें इस रोग से मुक्ति बड़ी आसानी से मिल जाती है।

३३. स्त्रियों की वन्ध्यता

यह एक दम्पति का साधारण और प्रचलित उदाहरण है। विवाह को पाँच वर्ष व्यतीत हो गये, किन्तु उन्हें सन्तान का मुख देखना नसीब न हुआ। दोनों को बच्चे की चाह थी। अतः हर प्रकार की औषधियों और साधनों से वे लोग काफी सावधान और बचकर रहा करते थे। उन्हें आशा थी कि उन्हें सन्तान होगी, किन्तु ऐसा नहीं हो सका।

युवती ने डॉक्टरों की सलाह ली, तो उन्होंने विश्वास दिलाया कि उसकी वन्ध्यता स्थायी है। स्त्री के ससुर ने उसे इस सम्बन्ध में उपवास की उपयोगिता बतलायी और कहा कि इससे कुछ सहायता मिल सकती है। फिर उसने उपवास-चिकित्सक से परामर्श लिया।

उसने पूछा कि "क्या मैं उपवास से गर्भवती बन सकती हूँ ?" उसे समझाया गया कि बहुत से कारणों से स्त्रियों में बाँझपन की उत्पत्ति होती है। अतः वन्ध्यता भी कई प्रकार की होती है। कुछ प्रकार की वन्ध्यता उपवास से दूर हो जाती है और कुछ प्रकार की बिलकुल दूर नहीं हो सकती है। इसके बाद उनको बताया गया कि सम्भव है कि आप उपवास से गर्भवती हो जायँ।

उनका उपवास प्रारम्भ हो गया। कुछ सप्ताहों तक उनका उपवास चलता रहा। उसके बाद उपवास समाप्त करा दिया गया।

फिर भाग्यवश वे गर्भवती हो गयीं और अन्त में उन्होंने एक सुन्दर स्वस्थ पुत्र-रत्न को जन्म दिया।

इस प्रकार उपवास के द्वारा हजारों बाँझ स्त्रियों को पुत्र और पुत्रियों की प्राप्ति हुई है, जो कि वर्षों से वन्ध्यता के कारण दुःखमय जीवन व्यतीत कर रही थीं। इन स्त्रियों में बहुतों को मासिक धर्म की शिकायत रहती थी। उन्हें अधिक रक्त-स्राव होता था और जबरदस्त ऐंठन के कारण वे प्रतिमाह बिस्तर पर पड़ी रहती थीं। बड़ी क्लाट्, छाती का घाव और अन्य लक्षणों के कारण थैली की ग्रंथियों का संतुलन बिगड़ जाता है। इसके कारण बच्चादानी या गर्भाशय में जलन तथा सूजन पैदा हो जाती है। नाड़ी-मण्डल में दुर्बलता आ जाती है।

दूसरी प्रकार की वन्ध्यता में मेट्राइटिस की बीमारी हो जाती है। इसमें गर्भाशय की परतों में सूजन आ जाती है। योनि से अधिक या कम वेजिनल डिसचार्ज (स्राव) होने लगता है। इस प्रकार अधिक मात्रा में एसिड के निकल जाने से 'स्परम' नष्ट हो जाता है।

उपर्युक्त अवस्थाओं में रोगियों को बड़ी आसानी से रोगमुक्त किया जा सकता है। शारीरिक और मानसिक दीर्घ विश्राम से रोगियों के स्वास्थ्य में काफी सुधार हो जाता है। स्त्रियों की कुछ प्रकार की वन्ध्यता बिलकुल ही ठीक नहीं की जा सकती है। जो वन्ध्यता कुदरती न होकर केवल बीमारियों के कारण हो जाती है, उसे बिलकुल ठीक कर दिया जा सकता है। गर्भ-धारण में रुकावट पैदा करनेवाले समस्त कारणों को उपवास से दूर कर दिया जा सकता है। अतः ऐसी स्त्रियों के लिए उपवास वरदान है।

बहुत-सी स्त्रियाँ गर्भ-धारण तो करती हैं, किन्तु शिशु को पूरे समय तक पेट में नहीं रख पाती हैं। शक्ति के अभाव में अक्सर गर्भपात हो जाता है। लेकिन उपवास से उन्हें उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति हो जाती है, जिससे वे पूर्ण विकसित बच्चे को जन्म दे सकती हैं। उनके शरीर के दूषित और विषाक्त पदार्थों के दूर हो जाने पर उचित पथ्याहार करते रहने से उनका गर्भपात रुक जाता है।

इस सम्बन्ध में एक आश्चर्यपूर्ण घटना मेरे सामने घटी है। यह कहानी उस स्त्री की है, जिसके २८ गर्भ गिरे थे। उसे केवल दस दिनों के उपवास और कुछ काल के उचित पथ्य से गर्भवती होने में सहायता प्राप्त हुई और उसने भी एक स्वस्थ बालक को जन्म दिया। उसकी डिलीवरी भी स्वाभाविक रूप से हुई थी।

स्त्रियों की अवस्था-विशेष के अनुसार वन्ध्यता-सम्बन्धी उपवास कभी अधिक लम्बा होता है, तो कभी अल्पकालीन भी होता है। इस सम्बन्ध में मैं एक और महिला रोगी का उदाहरण दे रहा हूँ, जिसे विवाह के दस वर्षों तक कोई सन्तान नहीं हुई थी। उसने गर्भ-अवरोध के लिए किसी औषधि-विशेष का कभी सेवन भी नहीं किया था। हर मासिक-धर्म के समय उसे अत्यधिक पीड़ा होती थी। तत्सम्बन्धी कष्टों से बचने के लिए वह प्रचलित औषधियों का सेवन किया करती थी।

मासिक-धर्म की समस्त गड़बड़ियों को स्थायी रूप से दूर करने के लिए केवल दस दिनों का उपवास उसके लिए पर्याप्त था। उपवास की समाप्ति के कुछ ही दिन बाद वह गर्भवती हो गयी।

उचित समय पर उसे भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अन्य एक महिला, जो रुग्ण और शरीर से दुर्बल थी, उसे भी कई छोटे-छोटे उपवास करने पड़े थे। तब कहीं जाकर उसने गर्भ धारण किया। प्रायः दस वर्षों से वह बाँझ बनी हुई थी।

कुदरती बाँझपन स्त्री और पुरुषों में बहुत ही कम होता है। फिर भी ऐसी हालत में उपवास से किसी फल की आशा रखना व्यर्थ है। रोगों और अन्य शारीरिक दोषों से जो वन्ध्यता पैदा होती है, उसमें उपवास अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है।

३४. गर्भावस्था में उपवास

स्त्रियों का गर्भ-धारण करना शरीर की एक बिलकुल स्वाभाविक प्रक्रिया है। हमें यह जान लेना चाहिए कि किसी भी स्वाभाविक प्रक्रिया में दर्द, असुविधा और अस्वाभाविक अवस्था की उत्पत्ति कभी नहीं होती है। गर्भावस्था के विषय में भी यही बात लागू होती है। स्वाभाविक हालत में रहनेवाली पशुओं की मादा को गर्भावस्था में ओकाई, उल्टी आदि से कष्ट भोगते कभी नहीं देखा गया है। संसार की आदिम जातियों में भी स्त्रियों को गर्भावस्था में पीड़ित होते हुए नहीं पाया जाता है। केवल सभ्य कहलानेवाली जातियों में स्त्रियों को गर्भावस्था में बहुत-सी तकलीफों का सामना करना पड़ता है।

इन सब बातों से पता चलता है कि स्त्रियों की गर्भावस्था में ओकाई, उल्टी, जी मिचलाना, प्रातःकालीन बुखार आदि उपद्रवों का बढ़ना कोई निश्चित और आवश्यक नियम नहीं है। अधिक संख्या में उपर्युक्त लक्षण बहुत साधारण और मंद होते हैं तथा बड़ी शीघ्रता से लुप्त भी हो जाते हैं। कुछ स्त्रियों में ये लक्षण अधिक उग्र और स्थायी रूप में पाये जाते हैं और उन्हींके कारण गर्भपात भी हो जाता है। किन्तु इसका वास्तविक कारण अभी तक विवादास्पद बना हुआ है।

प्रकृति के नियमों के विरुद्ध कार्य करने से बीमारियों की उत्पत्ति होती है। अतः गर्भावस्था के समय स्त्रियों के अंगों को बिलकुल ठीक अवस्था में रखना आवश्यक है। शरीर के सभी

कल-पुर्जों को कार्य करने के योग्य बनाये रखना प्रमुख कर्तव्य होता है। इससे गर्भ-धारण के समय उन्हें काफी सहायता मिलती है। हमें हर अवस्था के स्वभाव और तत्सम्बन्धी कारण को, साथ ही साथ उसकी प्रतिक्रिया को भी समझना चाहिए।

आधुनिक मनुष्यों का जीवन प्रकृति से दूर हटता जा रहा है। हमारे जीवन में अनेक प्रकार के दोष, दुर्गुण और विषाक्त पदार्थ भरे हुए हैं। इन्हींका दूषित प्रभाव मनुष्यों के शरीर, अंगों तथा प्रणालियों पर भी पड़ा है। विषमता, अस्वाभाविकता और विकृति से शरीर की बनावट और शरीर की समस्त प्रणालियों में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो गये हैं।

प्रकृति किसीका पक्षपात नहीं करती। प्रकृति के नियमों की अवज्ञा और उल्लंघन करने पर प्रकृति स्वयं मनुष्यों को दण्ड भी देती है। यदि किसी गर्भवती स्त्री को उल्टी, जी का मिचलाना, ओकाई, बुखार आदि से कष्ट होता है, तो उसके लिए वही दोषी है। गलत और दोषयुक्त आदतों से इन कष्टों की नींव शरीर में स्वयं उसीके हाथों डाली गयी है। गर्भवती होने के कारण वह कष्ट नहीं भोग रही है, बल्कि विजातीय विषाक्त पदार्थों की अधिकता के कारण इन बीमारियों से वह पीड़ित रहती है।

ऐसी स्त्रियों को प्रयत्न करना चाहिए नैसर्गिक स्वस्थ जीवन जीने का। प्राकृतिक साधनों से स्वास्थ्य को उन्नत बनाना चाहिए। गर्भस्थ शिशु के लिए स्वास्थ्यकर वातावरण का निर्माण करना चाहिए तथा उसे पर्याप्त पोषक-तत्त्व प्रदान करना चाहिए।

माँ के पेट में शिशु को माता से ही खुराक मिलती है। उसी-से उसका पालन-पोषण होता है। अगर माँ का रक्त शुद्ध है तो गर्भस्थ शिशु का स्वस्थ विकास होता है और स्त्रियों की गर्भावस्था

सुख-चैन से बीतती है। यदि स्त्री विजातीय द्रव्यों और दूषित पदार्थों से भरी हुई है, तो उसे ऐसी स्थिति का निर्माण करना होगा, जिससे गर्भ के भ्रूण को अच्छे पोषक-तत्त्वों की प्राप्ति हो सके। उसे अपने शरीर की पूरी सफाई करनी चाहिए, जिसमें सन्तान और माँ दोनों की भलाई है।

केवल गर्भाशय के स्वस्थ रहने से नये शिशु का पूर्ण विकास सम्भव नहीं है। उसके लिए स्त्रियों का समूचा शरीर पूर्ण रूप में स्वस्थ और सक्षम होना जरूरी है।

पेट में गड़बड़ी मची होती है तो खाद्य-पदार्थों को वह ग्रहण नहीं कर पाता। यकृत से दूषित पदार्थ बहने लगता है। पित्त की अधिकता से उल्टी होने लगती है। भोजन की बिलकुल इच्छा नहीं रहती है। इससे साफ जाहिर होता है कि शरीर अपनी सफाई के अभियान में व्यस्त है। अगर हम प्रकृति के इस संकेत का अर्थ न समझें और प्रकृति को इस स्वच्छता के कार्य में सहयोग न दें, तो इससे बढ़कर मूर्खता या लापरवाही और क्या हो सकती है ?

औषधियों से उल्टी को दबाने से रोगियों की अवस्था बेहद खराब हो जाती है। उल्टी का आना और जी का बार-बार मिचलाना बना रह जाता है। जो स्त्रियाँ भोजन की अनिच्छा में भोजन करना चालू रखती हैं और अधिक पुष्टिकर आहार ग्रहण करती हैं, वे केवल अपनी तकलीफों को ही बढ़ाती हैं।

उपर्युक्त सभी लक्षण भोजन को जबरदस्ती एकदम रोकने का आदेश देते हैं। भोजन बन्द कर देने पर शरीर की सफाई शुरू होने लगती है। वास्तव में उन्हें उस समय किसी भी प्रकार के भोजन की आवश्यकता नहीं रहती।

प्रथम प्राकृतिक संकेत और चेतावनी के साथ ही गर्भवती स्त्रियों को स्वतः भोजन वन्द कर देना चाहिए। इससे उन्हें और उनके वच्चे को किसी भी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचेगी। लम्वे उपवास से शायद वच्चे को कुछ हानि पहुँचे, किन्तु कम दिनों के उपवास से हानि की कोई आशंका नहीं। गर्भ-धारण के प्रारम्भिक दिनों में उपवास करना उचित है। इससे प्रातःकालीन बुखार भी दूर हो जाता है।

विस्तर पर लेटकर विश्रामपूर्वक उपवास करना चाहिए। भय और शंका से दूर रहकर मानसिक शान्ति को बनाये रखना चाहिए। किसी भी प्रकार की दवाओं का सेवन नहीं करना चाहिए। केवल तीन दिन से लेकर दस दिन तक का उपवास पर्याप्त है। इतने दिनों के उपवास में शरीर की सफाई वड़ी अच्छी तरह से हो जाती है। फिर उल्टी पूरे गर्भ-काल में कभी देखने में नहीं आती।

फल और सब्जियों का भोजन उनके स्वास्थ्य के लिए अधिक लाभदायक होता है। वे नियमित रूप में अल्प भोजन करें। उन्हें अच्छे किस्म की प्रोटीन अल्प मात्रा में लेना चाहिए। भोजन में स्टार्च का सेवन न करें।

प्रातःकालीन बुखार में तीन या चार दिन का उपवास यथेष्ट है। इसीसे वे रोग से मुक्त हो जाती हैं और उनकी बहुत-सी तकलीफें दूर हो जाती हैं। हमारे प्राकृतिक चिकित्सालय में एक गर्भवती स्त्री, जिसकी पाचन-शक्ति कम हो गयी थी, २१ दिन के उपवास के वाद पूर्ण स्वस्थ हुई। ऐसी अवस्थाओं में उपवास करना स्त्रियों के लिए हर तरह से लाभकारी है और यह एक प्राकृतिक साधन है। लम्वे उपवास तो केवल बहुत वड़ी अव्यवस्था के होने पर कराये जाते हैं। अक्सर छोटे उपवासों से ही गर्भवती स्त्रियों को बहुत लाभ होता है।

अन्तिम शब्द

यदि हम शरीर को एक अवसर प्रदान करें, तो हमारे शरीर की कोषाओं में पर्याप्त शक्ति भरी हुई है, जो हमें स्वयं स्वस्थ बना सकती है। हमारे शरीर के अंग दोषयुक्त भोजन, अत्यधिक श्रम और दूषित जीवन-पद्धति से जब अधिक दब जाते हैं, पीड़ित हो उठते हैं, तब उपवास से उन्हें विश्राम मिलता है और शरीर स्वच्छ हो जाता है।

उपवास, विश्राम, शांति, सुन्दर स्वस्थ जीवन, उचित आहार, सही विचार में ही पर्याप्त बुद्धिमत्ता है। अधिक भोजन करने से विषाक्त विजातीय द्रव्य अधिक परिमाण में संचित होते हैं और फिर अधिक मानसिक तनाव और मादक द्रव्यों के सेवन से हमारे शरीर, मन और उनके कार्यों में विष फैल जाता है। उनसे बचे रहने के लिए भी काफी बुद्धिमानी की आवश्यकता है।

इस पुस्तक में चिकित्सा-शास्त्र के कोई बड़े सिद्धान्त नहीं दिये गये हैं और न उपवास को स्वयं कोई उपचार ही बतलाया गया है। उपवास तो शरीर को विश्राम देने का एक साधनमात्र है, जिससे मानव के इस जटिल और रहस्यपूर्ण शरीर को एक अवसर मिलता है, शरीर स्वयं स्वास्थ्य-लाभ के लिए प्रयत्न करता है। जहाँ वातावरण शांत रहता है, कोई दबाव नहीं रहता, कोई बाधा-विघ्न नहीं रहता, वहीं सच्ची शान्ति और आरोग्यप्रद शक्ति प्राप्त हो सकती है।

●